वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

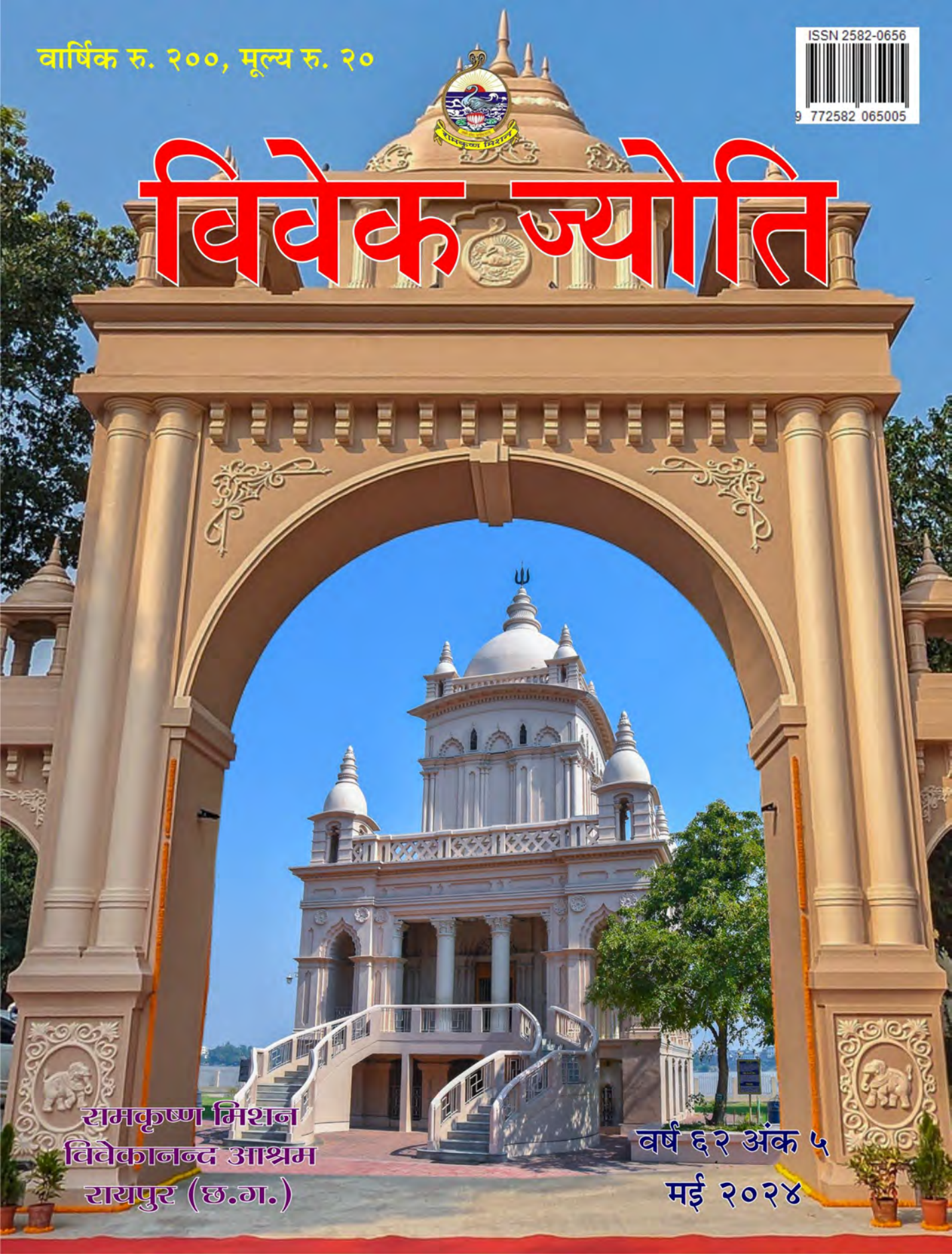

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक ५
मई २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक ५

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

वैशाख, सम्वत् २०८१

मई, २०२४

अनुक्रमणिका

* श्रीरामकृष्ण यहाँ (बेलूड़ मठ में) दीर्घ काल तक निवास करेंगे : विवेकानन्द १९८
* श्रीराम और श्रीरामकृष्ण (स्वामी निखिलात्मानन्द) २०१
* आनन्द ईश्वर के नाम से आता है (स्वामी सत्यरूपानन्द) २०५
* भगवान बुद्ध का जीवन और सन्देश (डॉ. जया सिंह) २०६
* (बच्चों का आंगन) बच्चों को मन्दिर क्यों जाना चाहिए? (श्रीमती मिताली सिंह) २०९
* मन्दिर का इतिहास (राजकुमार गुप्ता) २१३
* सबकी श्रीमाँ सारदा (स्वामी चेतनानन्द) २१६
* (युवा प्रांगण) युवा मन पर भोजन का प्रभाव (स्वामी गुणदानन्द) २२०
* आनन्द-यात्रा (स्वामी त्रिपुरहरानन्द) २२२
* हिन्दी साहित्याकाश के प्रखर सूर्य श्रीराम (उत्कर्ष चौबे) २२८
* (कविता) रामकृष्ण जगदीश्वर प्रभुवर (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) २१५
* (कविता) रमते हरि भारत के मन में (श्रीधर) २१५

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १९७
पुरखों की थाती १९७
सम्पादकीय १९९
रामगीता २१०
श्रीरामकृष्ण-गीता २१५
प्रश्नोपनिषद् २२७
सारगाछी की स्मृतियाँ २३१
गीतातत्त्व-चिन्तन २३४
साधुओं के पावन प्रसंग २३६
समाचार और सूचनाएँ २३८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित द्वार रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में बेलूड़ मठ में बनाया गया है और मन्दिर स्वामी विवेकानन्द जी का है, जिसका निर्माण २८ जनवरी, १९२४ में हुआ था। इस मन्दिर का शताब्दी-वर्ष मनाया जा रहा है। विस्तृत जानकारी के लिए सम्पादीय पृष्ठ देखें।

मई माह के जयन्ती और त्यौहार

०१	रामकृष्ण मिशन स्थापना दिवस
२३	बुद्ध जयन्ती
४,१९	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
डॉ. अरविंद कांकारिया, करेली, नरसिंहपुर (म.प्र.)	२,१००/
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८,४०१/-
श्रीमती सुलेखा कौल, मालाड (पं) मुम्बई (महा.)	१०,६००/-
श्रीमती मृदुला शुक्ला, बलौदा बाजार (छ.ग)	२०,०००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७२१. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर	लाईब्रेरी, रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

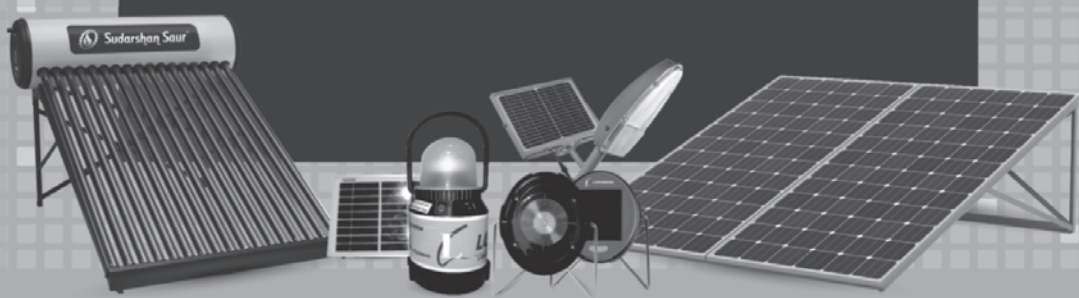

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ मई २०२४ अंक ५

बुद्धदेव-स्तोत्रम्

न ब्रह्मलोके न च देवलोके
न यक्षगन्धर्वमनुष्यलोके।
लोकस्य जातिजरापनेता
नान्योऽस्ति त्वत्तो हि मनुष्यचन्द्रः।।

– हे मानव-चन्द्र ! ब्रह्मलोक, देवलोक एवं यक्षलोक में, गन्धर्वलोक तथा मनुष्यलोक में भी लोगों के जन्म-जरा आदि दुखों का निराकरण करनेवाले आपके अतिरिक्त अन्य दूसरा कोई नहीं है।

लोके क्लेशाग्निसन्तप्ते प्रादुर्भूतो महह्रदः।
नमोऽस्तु बोधिसत्त्वाय सम्बुद्धाय नमो नमः।।

– क्लेशाग्नि सन्तप्त लोक में शान्तिप्रदायक महासरोवर समान प्रकट आप बोधिसत्त्व एवं सम्बुद्ध को बारम्बार नमस्कार।

पुरखों की थाती

मन्ये सत्यमहं लक्ष्मीः समुद्राद्धूलिरुत्थिता।
पश्यन्तोऽपिनपश्यन्तिसन्तोविह्वललोचनाः।।८२९।।

– मेरा मानना है कि लक्ष्मी (सम्पदा) वस्तुतः समुद्र से निकली धूल के समान है; क्योंकि इस धन-रूपी धूल से विह्वल हुई आँखोंवाले देखते हुए भी नहीं देख पाते।

मन्ये मोहपिशाचस्य स्थानं यौवनदुर्वनम्।
यत्र कामादयः क्रूरा यातुधानाः सहस्रशः।।८३०।।

– मेरा मानना है कि मोह रूपी पिशाच उस यौवन रूपी दुर्गम वन में निवास करता है, जहाँ काम-वासना जैसे हजारों क्रूर दैत्य विचरण किया करते हैं।

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।८३१।।

– लक्ष्मीजी मेरी माता हैं, भगवान विष्णु मेरे पिता हैं, उनके भक्त मेरे बन्धु-बान्धव हैं और तीनों लोक मेरा अपना देश है।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।।८३२।।

– जिसके घर में न वात्सल्यमयी माता हो और न मधुर-भाषिणी पत्नी हो, उसे तो वन में ही चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर तथा वन दोनों ही समान हैं।

श्रीरामकृष्ण यहाँ (बेलूड़ मठ में) दीर्घ काल तक निवास करेंगे : विवेकानन्द

श्री गुरुदेव ने मुझसे कहा था कि तू मुझे कन्धे पर चढ़ाकर जहाँ ले जायेगा, मैं वहीं जाऊँगा और रहूँगा, चाहे वह स्थान वृक्ष के तले हो या कुटी में। इसीलिए मैं स्वयं उनको कन्धे पर उठाकर नयी मठ-भूमि पर ले जा रहा हूँ। निश्चय जान लेना कि श्री गुरुदेव 'बहुजनहिताय' यहाँ दीर्घ काल तक निवास करेंगे। (६/७९)

यदि तुम पर उनकी (श्रीरामकृष्ण की) कृपा न होती, तो तुम यहाँ क्यों आते? श्री गुरुदेव (श्रीरामकृष्ण) कहा करते थे, 'जिन पर भगवान की कृपा हुई है, उनको यहाँ अवश्य ही आना होगा। वे कहीं भी क्यों न रहें, कुछ भी क्यों न करें, यहाँ की बातों से और यहाँ के भावों से उन्हें अवश्य अभिभूत होना होगा।' (६/५१)

श्री गुरुदेव की इच्छा से आज उनके धर्मक्षेत्र की प्रतिष्ठा हो गयी। बारह वर्ष की चिन्ता का बोझ आज सिर से उतर गया। इस समय मेरे मन में क्या-क्या भाव उठ रहे हैं, सुनेगा? यह मठ विद्या एवं साधना का एक केन्द्र होगा। तुम्हारे समान सब धार्मिक गृहस्थ इस भूमि के चारों ओर अपने घर-बार बनाकर बसेंगे और बीच में त्यागी-संन्यासी लोग रहेंगे। (६/८१)

श्री गुरुदेव का जो उदार मत था, उसी का यह केन्द्र होगा। विश्व-समन्वय की जो किरण यहाँ से प्रकाशित होगी, उससे सारा जगत् उद्भासित हो जायेगा। (६/८०)

यदि ईश्वर ने चाहा तो इस मठ को समन्वय का महान क्षेत्र बनाना होगा। हमारे श्रीरामकृष्ण सर्वभावों की साक्षात् समन्वय-मूर्ति हैं। उस समन्वय के भाव को यहाँ पर जगाकर रखने से श्रीरामकृष्ण संसार में प्रतिष्ठित रहेंगे। सारे मत, सारे पंथ, ब्राह्मण-चाण्डाल सभी जिससे यहाँ पर आकर अपने-अपने आदर्श को देख सकें, वह करना होगा। उस दिन जब मठ भूमि पर श्रीरामकृष्ण की प्राण-प्रतिष्ठा की, तब ऐसा लगा मानो यहाँ से उनके भावों का विकास होकर चराचर विश्वभर में छा गया है। मैं तो जहाँ तक हो सके, कर रहा हूँ और करूँगा, तुम लोग भी श्रीरामकृष्ण के उदार भाव लोगों को समझा दो। केवल वेदान्त पढ़ने से कोई लाभ न होगा। असल में प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में शुद्धाद्वैतवाद की सत्यता को प्रमाणित करना होगा। श्रीशंकर इस अद्वैतवाद को जंगलों और पहाड़ों में रख गये हैं, मैं अब

उसे वहाँ से लाकर संसार और समाज में प्रसारित करने के लिये आया हूँ। घर-घर में, घाट-मैदान में, जंगल-पहाड़ों में इस अद्वैतवाद का गम्भीर नाद उठाना होगा। तुम लोग मेरे सहायक बनकर काम में लग जाओ। (६/१२३)

पहले कुछ त्यागी पुरुषों की आवश्यकता है, जो अपने परिवार के लिए न सोचकर दूसरों के लिए जीवन का उत्सर्ग करने को तैयार हों। इसीलिए मैं मठ की स्थापना करके कुछ बाल-संन्यासियों को उसी रूप में तैयार कर रहा हूँ। शिक्षा समाप्त होने पर, वे लोग द्वार-द्वार पर जाकर सभी को उनकी वर्तमान शोचनीय स्थिति समझायेंगे, उस स्थिति से उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इस विषय में उपदेश देंगे और साथ ही साथ धर्म के महान तत्त्वों को सरल भाषा में उन्हें साफ-साफ समझा देंगे। (६/१२८)

सम्पादकीय

स्वामी विवेकानन्द-मन्दिर, बेलूड़ मठ का शताब्दी वर्ष : ऐतिहासिक स्मृति

रामकृष्ण मिशन ने अपनी संस्था रामकृष्ण मिशन की स्थापना की १२५वीं वर्षगाँठ विगत वर्ष बड़े धूमधाम से और व्यापक रूप से मनाया। रामकृष्ण मिशन के विश्व के सम्पूर्ण केन्द्रों में वर्षव्यापी विविध कार्यक्रम आयोजित हुये। विभिन्न संगोष्ठियों और शिविरों का आयोजन हुआ और उसमें रामकृष्ण मिशन के अतीत, वर्तमान और भावी योजनाओं पर चर्चा हुई। रामकृष्ण मिशन की १२५ वर्ष की संघर्ष-यात्रा पर विचार-विमर्श हुआ। वर्तमान विश्वव्यापी रामकृष्ण मिशन के प्रति जन-समर्थन, लोक-आस्था और सम्मान पर चर्चा हुई। दिसम्बर, २०२३ में बेलूड़ मठ में अखिल भारतीय युवा-सम्मेलन और रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावप्रचार परिषद के सम्मेलन का आयोजन किया गया। रामकृष्ण मिशन के आदर्शों को युवकों और भक्तों के अन्त:करण में सुसंचार करने का प्रयत्न किया गया। इसका उद्देश्य था – युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण, जगत जननी श्रीमाँ सारदा और युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द के विचारों और आदर्शों से जन-समुदाय सुपरिचित हो, सर्वप्रथम वे अपने जीवन में उसे आत्मसात् करें, उसका आचरण करें तथा समाज और राष्ट्र में सुख-शान्ति-समृद्धि और आध्यात्मिकता का प्रसार करें, जिससे स्वामी विवेकानन्द द्वारा परिकल्पित भारत का स्वप्न साकार हो सके और भारत पुन: विश्वगुरु के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो सके।

इस वर्ष २०२४ में बेलूड़ मठ में स्थापित दो मन्दिरों – स्वामी विवेकानन्द और प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी के मन्दिर का शताब्दी-वर्ष है। बड़ी विलक्षण बात है। व्यक्ति का शताब्दी-समारोह मनाया जाता है, संस्थाओं का शताब्दी समारोह मनाया जाता है, लेकिन मन्दिर का शताब्दी-समारोह मनाया जा रहा है यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन में प्रश्न उठता है कि क्या इस आयोजन की कोई प्रासंगिकता है? यह कौन-सा मन्दिर है? इसमें मन्दिर में अधिष्ठित देव कौन-से हैं? इनकी क्या भूमिका रही है समाज के विकास में? इन सब तथ्यों पर गहन चिन्तन-मनन और प्रकाश का प्रयोजन है। आइये, इस विषय में थोड़ी-सी चर्चा करते हैं।

हाँ, जिन मन्दिरों की शताब्दी मनाई जा रही है, वास्तव में इन महान पुरुषों ने विश्व की दशा-दिशा को परिवर्तित कर दिया। जन-जीवन में एक नई क्रान्ति लाई। इसलिये उनका स्मरण-मनन-चिन्तन आवश्यक है। वर्षों के अन्तराल में पीढ़ियाँ अपने आदर्श पुरुषों को विस्मृत कर जाती हैं। महान पुरुषों के जीवनादर्श पुस्तकों के पन्नों में या कुछ प्रबुद्ध लोगों तक ही सिमट कर रह जाते हैं। लेकिन जन-साधारण को, अशिक्षितों को महान पुरुषों के स्मारक, मन्दिर, स्मृति-कक्ष, वेष और अवशेष ही प्रेरणा के स्रोत बनते हैं। जन-साधारण इन्हीं से प्रेरित होता है। जन-जीवन में पुन: उन आदर्शों की स्थापना होती है। समाज प्रेरित होकर पूर्ण उत्साह के साथ अपने आदर्शों की ओर अग्रसर होकर अपने जीवन में उन नैतिक-आध्यात्मिक आदर्शों को क्रियान्वित करता है और ऐसा करने को समाज को प्रेरित करता है।

एक छोटा बच्चा, जो अभी विद्यालय पढ़ने नहीं जाता है, वह भी मूर्ति देखकर पूछता है, यह कौन है? तब उसके माता-पिता उसे बताते हैं। रायपुर की एक घटना मुझे याद आ रही है। एक-दो वर्ष का बच्चा विवेकानन्द सरोवर, रायपुर के मार्ग से अपनी माँ के साथ जा रहा था। उसने सरोवर के बीच में एक बहुत बड़ी मूर्ति देखी। उसने पूछा, माँ, यह क्या है? उसकी माँ ने कहा, यह स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति है। उसने पूछा, ये कौन थे? माँ ने बच्चे के समझने योग्य स्वामी विवेकानन्द के बारे में बताया। उसी बच्चे ने आश्रम द्वारा विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता में सप्रसंग आवृत्ति सुनाकर प्रथम स्थान प्राप्त किया था। मैं तो यह कह रहा था कि मूर्ति सबके लिये प्रेरक होती है।

स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है, वे कौन-से दो मन्दिर हैं, जिनकी शताब्दी मनाई जा रही है? वह कौन-सा व्यक्तित्व है, जिनके मन्दिर की शताब्दी मनाई जा रही है? इनमें जो पहला मन्दिर है, वह सर्वजन विदित और विश्व-प्रसिद्ध युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी का है, जो पावन भूमि बेलूड़ मठ में स्थित है। स्वामी विवेकानन्द जी के मन्दिर की स्थापना बेलूड़ मठ के पवित्र परिसर में पावनकारिणी गंगा के सुरम्य तट पर २८ जनवरी, १९२४ को स्वामीजी की पावन तिथि में हुई थी। स्वामी विवेकानन्द जी का यह मन्दिर देश-

विदेश से आनेवाले यात्रियों, उनके अनुयायियों और भक्तों में समाज-सेवा, राष्ट्रभक्ति और आध्यात्मिक जीवन-यापन की प्रेरणा देता है। यह वही परिसर है, जहाँ पर स्वामीजी ने निवास किया था। यह परिसर स्वामीजी के पादारविन्दों के रेणु-सौरभ से सुशोभित और अलंकृत है। इसी परिसर में स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों और शिष्यों को सेवा और आध्यात्मिकता का अभिनव प्रशिक्षण दिया। इस परिसर में विद्यमान स्वामीजी का निवास-कक्ष अभी भी वैसा ही है और उसमें उनकी विद्यमानता का बोध कर उसे प्रतिदिन वैसा ही सुसज्जित रखा जाता है, जैसे उनके जीवन-काल में था। ये सभी वस्तुयें दर्शकों के मन में स्वामीजी के गुणों की उद्दीपना करती हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त स्वामीजी के मन्दिर की स्थापना का बोध हृदय के अन्तस्तल से हुआ, जो १९२४ में साकार हुआ। गंगा-तट पर अवस्थित इस मन्दिर में प्रवेश करते ही दर्शनार्थियों को आध्यात्मिक स्पन्दन का अनुभव होता है। बेलूड़ मठ में उनकी महासमाधि के बाद जिस स्थान पर उनका अन्तिम संस्कार किया गया, उस स्थान पर उनके मन्दिर का निर्माण हुआ। स्वामीजी की पूत अस्थियाँ वहाँ विद्यमान हैं। स्वामीजी जिस बिल्व वृक्ष के नीचे बैठते थे, वह बिल्व वृक्ष-स्थल भी पृथक चिह्नित कर रखा गया है। स्वामीजी के मन्दिर में प्रस्थापित स्वामीजी की प्रतिमा को देखकर उनके उदात्त विराट व्यक्तित्व और उनके गुणों का स्मरण होता है। मानो वह जीवन्त प्रतिमा बोल उठेगी – ''उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत।'' यह मन्दिर स्वामीजी के जीवन की संघर्ष-यात्रा का प्रतीक है। उन्होंने अपने जीवन में समाज के, भारत के विविध रूपों का दिग्दर्शन किया, जन-जीवन के विभिन्न रूपों का अवलोकन किया, विभिन्न विषम परिस्थितियों का सामना किया और इसके अतीत जाकर हिमालय के कासार देवी, कश्मीर की क्षीर भवानी आदि में ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति की। स्वामीजी का यह मन्दिर इन्हीं सब स्मृतियों को सँजोये हुए है। प्रबुद्ध व्यक्तियों को एक ओर जहाँ स्वामीजी की बौद्धिकता और तर्कशक्ति आकर्षित करती है, तो दूसरी ओर राष्ट्रभक्त देशसेवा की प्रेरणा स्वामीजी से प्राप्त करता है। वहीं अध्यात्म-पथ का जिज्ञासु आध्यात्मिक निर्देश प्राप्त कर अपने को धन्य मानता है। स्वामीजी के मन्दिर में प्रवेश करने पर ये सब स्मृतियाँ जाग्रत हो जाती हैं।

स्वामीजी की इच्छा

स्वामी विवेकानन्द का यह मन्दिर दो मंजिला है, जिसमें नीचे उनकी श्वेत प्रस्तर प्रतिमा है और ऊपर ध्यान हेतु संगमर्मर की ओंकार की आकृति है। स्वामीजी ब्रह्मलीन होने के तीन दिन पहले मठ परिसर में अपने गुरुभाई स्वामी प्रेमानन्द जी के साथ टहल रहे थे। तब उन्होंने गंगा के किनारे एक निश्चित स्थान की ओर संकेत कर गम्भीर भाव से कहा – ''जब मैं अपना शरीर-त्याग कर दूँगा, तब मेरा अन्तिम संस्कार उसी स्थान पर कर देना।'' स्वामीजी के इच्छानुसार उसी स्थान पर स्वामीजी का यह मन्दिर अवस्थित है।

मन्दिर का दुखद पृष्ठ

स्वामीजी का यह मन्दिर जो आज सम्पूर्ण विश्व के प्रेरणा का केन्द्र है। इस मन्दिर के निर्माण की भी बड़ी मार्मिक गाथा है। स्वामीजी ४ जुलाई, १९०२ को ब्रह्मलीन हुये, किन्तु उनका यह मन्दिर १९२४ में बना। स्वामीजी जैसे महान पुरुष का, जिन्होंने भारत के उत्थान के लिये अपने रक्त की बूँद-बूँद तक को समर्पित कर दिया, भारतीय जन-मानस को जाग्रत करने और भारतवासियों की शिक्षा-स्वास्थ्य हेतु अर्थार्जन हेतु विदेशों में अथक परिश्रम किया, फिर भी धन के अभाव में उन महापुरुष के समाधि-मन्दिर के निर्माण में २४ वर्ष लग गये। यह एक विडम्बना ही है ! प्रभु की इच्छा !

इस मन्दिर का निर्माण-कार्य स्वामीजी के ब्रह्मलीन होने के ५ वर्ष बाद १९०७ में प्रारम्भ हुआ। परन्तु निर्माण मन्थर गति से चल रहा था। जब मन्दिर निर्माणाधीन अपूर्ण था, तभी १९०९ में स्वामीजी का विशाल चित्र सजाकर रखा गया। १९१२ में भी जब मन्दिर का निर्माण पूर्ण नहीं हो सका और निर्माण की गति धीमी थी, तो उसे देखकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने दुखपूर्वक 'मराठा' नामक पत्रिका में एक सूचना प्रकाशित की – ''स्वामीजी ने १० वर्ष पहले देह-त्याग किया था। इसमें कोई संशय नहीं कि उनकी मृत्यु से सम्पूर्ण देश की अपूरणीय क्षति हुई है। लोगों ने इस सम्बन्ध में अपने यथेष्ट उद्गार भी व्यक्त किये हैं। परन्तु क्या हम आधुनिक भारत के इस राष्ट्रभक्त सपूत के लिये अब तक उनकी स्मृति में एक स्मारक तक नहीं बना सके? यह बड़ी ही लज्जा का विषय है और भारतीयों की अकर्मण्यता का जीता-जागता उदाहरण है।'' इसके बाद भी भारतवासियों में जागृति नहीं आयी।

मन्दिर में स्वामीजी का जो संगमर्मर का चित्र है, वह उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता के प्रयत्न से सफल हुआ।

शेष भाग पृष्ठ २०४ पर

श्रीराम और श्रीरामकृष्ण

स्वामी निखिलात्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज, प्रयागराज, नारायणपुर, जयपुर के सचिव थे। उन्होंने यह व्याख्यान श्रीरामकृष्ण आश्रम, अमरकंटक में दिया था, जिसे विवेक-ज्योति पत्रिका के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

(गतांक से आगे)

गोस्वामीजी लिखते हैं –

सानुज सिय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर।।

गोस्वामीजी लिखते हैं – भगवान राम सीताजी और लक्ष्मणजी समेत पर्ण कुटीर में ऐसे विराजमान हैं, जैसे ज्ञान भक्ति और वैराग्य के साथ विराजमान हो ! श्रीराम हैं ज्ञान के प्रतीक, सीताजी हैं भक्ति की प्रतीक और लक्ष्मणजी हैं वैराग्य के प्रतीक। जब श्रीराम को अवतार की लीला करनी थी, तब वे महाराज मनु और शतरूपा के सामने सीताजी को साथ लेकर प्रगट हुए थे, भक्ति देवी को साथ लेकर, पर अभी भक्तिदेवी सीता को लेकर के नहीं आये, अभी वैराग्य के प्रतीक लक्ष्मणजी को लेकर आये हैं। कई कार्य भगवान राम सीताजी को नहीं करने देते। सीता हैं साक्षात् भक्ति ! कुछ कार्य श्रीराम उन्हें करने नहीं देते।

एक प्रसंग आता है। भगवान राम सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ वन प्रान्त से चले आ रहे हैं। लक्ष्मणजी देखते हैं कि दोनों को प्यास लग रही है, पर श्रीराम और सीता जी कुछ कह नहीं रहे हैं। लक्ष्मणजी कह रहे हैं, मुझे प्यास लगी है मैं जल लेने जा रहा हूँ। भगवान राम ने कहा – ठीक है लक्ष्मण ! तुम स्वयं पानी पीकर हमारे लिए भी जल ले आना। उधर लक्ष्मणजी जल लेने के लिए जाते हैं और इधर सीताजी भगवान राम से कहती हैं – प्रभु ! आप बैठ जाइये। मैं आपके चरणों की सेवा कर दूँ। श्रीराम एक शिलाखंड पर बैठ जाते हैं और एक काँटा लेकर पैरों में पड़ा काँटा निकालने लगते हैं। गोस्वामीजी कवितावली रामायण में बड़ा सुंदर वर्णन करते हैं – सीताजी कहती हैं श्रीराम से –

जल को गये लक्खनु, हैं लरिका,
परिखौ पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरू पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।।
तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै
बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाहको नेहु लख्यो
पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े।।

(कवितावली २/१२)

सीताजी भगवान राम से कहती हैं – प्रभु ! लक्ष्मण बालक जल लाने के लिए गये हैं। अब जरा आप बैठ जाइये, आपके चरणों की सेवा कर दूँ। श्रीराम एक शिलाखंड पर बैठ जाते हैं। एक काँटा लेकर पैरों में काँटा पड़ा है, उसे निकाल रहे हैं। सीताजी कहती हैं वह काँटा मुझे दे दीजिए, मैं आपके पैरों का काँटा निकाल देती हूँ। भगवान कहते हैं – भले आपको दूसरा काम दे दूँ, पर आपको ये काम नहीं दे सकता। सीताजी कहती हैं – क्या मैं ये तुच्छ कार्य नहीं कर सकती? आप मुझे ये काम क्यों नहीं करने दे रहे हैं? भगवान राम कहते हैं – आप हैं साक्षात् भक्ति, आपका काम है दूसरों को मेरे चरणों तक पहुँचाना, पर जो मेरे चरणों तक पहुँच गया है, उसे दूर करना आपका काम नहीं है, ये काँटा जो मेरे चरणों में पहुँच

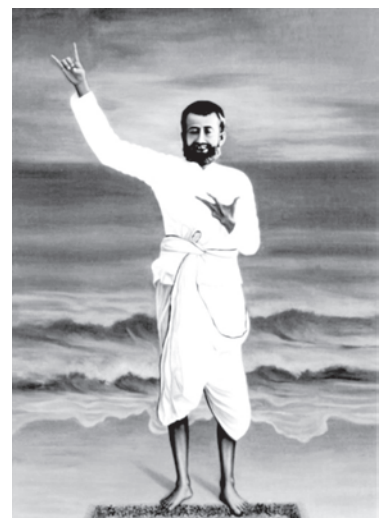

गया है, उसे निकालना भक्ति की मर्यादा नहीं है, काँटा आप निकाल देंगी, तो फिर भक्ति की मर्यादा कहाँ रहेगी? ये काम मैं आपको नहीं करने दूँगा। तो कहा जाता है कि वह काँटा श्रीराम के चरणों से फिर निकला ही नहीं, उनके चरणों में ही पड़ा रहा। यहाँ तक कि रावण का वध करके श्रीराम अयोध्या आते हैं, उनका जब राज्याभिषेक होता है, तब कहा जाता है कि वेद आकर के भगवान राम की स्तुति करते हैं। स्तुति करते हुए वेद कहते हैं –

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे।।

(७/१३/छंद-४)

वेद कहते हैं – जिन चरणों में ध्वज, वज्र और अंकुश है, जिन चरणों में ऐसे शुभ चिह्न विद्यमान हैं, जिन चरणों में कंटक विंधे हुये हैं, वैसे उन चरणों की हम वन्दना करते हैं। हम इन कंटकों की भी वन्दना करते हैं। तो अन्त तक वे काँटे निकले नहीं। इसलिए कुछ कार्य ऐसे हैं, जो भगवान राम सीताजी को नहीं करने देते। अब ये लक्ष्मणजी वैराग्य के प्रतीक हैं। लक्ष्मणजी को लेकर महाराज दशरथ के सामने प्रगट हुए हैं। किसलिए? अब लीला का अवसान करना है। जब लीला का प्रारम्भ करना था, तब भक्तिरूपी सीता को लेकर प्रगट हुए थे, अब लीला का अवसान करना है, तो वैराग्यरूपी लक्ष्मणजी को लेकर प्रगट होते हैं श्रीराम। भगवान राम क्या कहते हैं? भगवान राम मानों दशरथजी से कहते हैं – महाराज ! जब आप मनु और शतरूपा के रूप में थे, आप लोगों ने प्रेमभरी दृष्टि से मेरी ओर निहारा था, मुझे आपका पुत्र बन जाना पड़ा। गोस्वामीजी लिखते हैं न ! –

चितवहिं सादर रूप अनूपा।
तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा।। १/१४७/६

जहाँ मनु और सतरूपा प्रेम भरी दृष्टि से भगवान राम की ओर निहारते हैं, भगवान राम कहते हैं – आपके प्रेम के वशीभूत होकर मुझे आपका पुत्र बनकर आना पड़ा, पर अभी मेरा समय आया है कि मैं आप लोगों की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखूँ ! भगवान राम प्रेमभरी दृष्टि से महाराज दशरथ को निहारते हैं। तब होता क्या है?

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितई पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना। ६/१११/५

जब भगवान राम महाराज दशरथ को प्रेमभरी दृष्टि से देखते हैं, तब महाराज दशरथजी में ज्ञान का उन्मेष होता है। महाराज दशरथ सोचते हैं – अरे ! मैं साक्षात् भगवान को, साक्षात् नारायण को अभी तक अपना पुत्र समझता रहा ! जैसे ही यह ज्ञान महाराज दशरथ में प्रगट हुआ, महाराज दशरथ क्या करते हैं? –

बार-बार कर प्रभु प्रणामा।
दशरथ हरषि चले सुरधामा।।

महाराज दशरथ को यह ज्ञान हो गया कि भगवान राम उनके पुत्र नहीं है, ये साक्षात् नारायण हैं। अभी तक मैं इन्हें अपना पुत्र समझता रहा। तब वे बार-बार भगवान राम को प्रणाम करते हैं और हर्षित होकर अपने धाम को सिधारते हैं। ये अवतार ऐसे होते हैं कि भक्त जैसा चाहता है, भगवान वैसी ही लीला करते हैं। भक्त के प्रेमपाश में भगवान बँध जाते हैं।

जब श्रीरामकृष्ण के रूप में आते हैं भगवान, तब क्या करते हैं? उनका नाम होता है गदाधर ! श्रीरामकृष्ण को बचपन में सभी गदाधर के नाम से पुकारते हैं। गदाई के रूप से पुकारते हैं। ऐसा अद्भुत आकर्षण गदाधर था कि कामारपुकुर के जो आबाल-वृद्ध-वनिता हैं, सभी उनके दर्शन के लिए उत्सुक रहते हैं। जब तालाब में स्नान करने जाते हैं, तभी गदाधर का दर्शन करने के लिए चले आते हैं। जब गदाधर थोड़े बड़े होते हैं, तो ऐसे श्रुतिधर हैं कि जो भी सुनते हैं, उन्हें बिल्कुल याद हो जाता है। कितने भजन उन्हें कंठस्थ हो जाते हैं। जो भी नाटक देखते हैं, उनको सब कंठस्थ हो जाता है। गाँव की महिलायें कहती हैं – अरे गदाई, वह भजन गाकर के सुना न, वह नाटक करके दिखा न ! वे जैसा चाहती हैं, श्रीरामकृष्ण वैसी ही लीला करते हैं, वैसा ही गान करते हैं, वैसा ही नाटक करते हैं। एक अद्भुत आकर्षण होता है, जहाँ भगवान नरदेह धारण करके आते हैं ! अपूर्व आकर्षण होता है ! हम श्रीमद्भागवत् में पढ़ते हैं न, भगवान श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ बछड़ों को लेकर चराने के लिए गये हैं। ब्रह्माजी के मन में भ्रम हो आता है। ब्रह्मा को लगता है – अरे क्या ये भगवान हैं? कैसे सामान्य बालकों की जैसी लीला कर रहे हैं ! खेल कर रहे हैं ! ये कैसे भगवान हो सकते हैं? शंका हो आती

है ब्रह्माजी के मन में। इधर कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ खेल रहे हैं, उधर ब्रह्माजी ने जो बछड़े थे, उन बछड़ों को गायब कर दिया। इतने में ग्वाल-बालों ने कहा – अरे कन्हैया ! हमारे बछड़े कहाँ गये? श्रीकृष्ण ने देखा कि बछड़े गायब हैं, दिखाई नहीं दे रहे हैं। श्रीकृष्ण ने कहा – अच्छा, मैं देखता हूँ बछड़ों को, तुमलोग यहीं रहो। उधर कृष्ण बछड़ों को खोजने के लिए गये। ब्रह्मा ने ग्वाल-बालकों को भी गायब कर दिया। कृष्ण देखते हैं, अरे बछड़े तो मिले नहीं, कहाँ चले गये? वापस आकरके देखते हैं – ग्वाल-बाल भी नहीं हैं। बड़ा आश्चर्य होता है। कहाँ चले गये ! ग्वाल-बाल भी गायब, बछड़े भी गायब ! जब चिन्तन करते हैं भगवान, तो पता लग जाता है। अच्छा ! ये ब्रह्मा की करतूत है? तुरन्त भगवान अपने योगबल से जितने बछड़े, ग्वाल-बाल थे, सब उत्पन्न कर लेते हैं और उन्हें लेकर के जैसे ही वापस घर लौटते हैं, एक अपूर्व दृश्य देखने में आता है। जितनी गायें थीं, उन्हें अपने बछड़ों को देखकर अपने आप उनके थनों से दूध निकलने लगा। इतना प्रेम ! गायें अपने बछड़ों को चाट रही हैं। माताओं को कितना प्रेम अपने पुत्रों के प्रति उमड़ रहा है। उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि अपने पुत्रों के प्रति कितना प्रेम उमड़ रहा है। वे माता-पिता कुछ कारण नहीं समझ पा रहे हैं कि अपने बच्चों के प्रति इतना प्रेम कैसे हो रहा है? क्योंकि साक्षात् भगवान उनके पुत्र और बछड़ों के रूप में है, इसलिये इतना प्रेम हो रहा है ! तो भगवान जब अवतार लेकर नरदेह धारण करके आते हैं, तब उनका आकर्षण ही ऐसा होता है। हम कारण ही नहीं समझ पाते। कामारपुकुर के आबालवृद्ध-वनिता इस गदाधर के प्रति इतने अनुरक्त कि जब वे महिलायें तालाब में स्नान करने जा रही हैं, तब कहती हैं – चलो, चन्द्रादेवी के यहाँ जायें, गदाई का दर्शन करके आयें। वे जाती हैं और गदाधर का चेहरा देखकर के प्रसन्न होकर जाती हैं। गदाधर जब सात-आठ साल के हुये, तब वही महिलायें उनसे मिलने आती हैं। गदाधर उनसे कहते हैं, यह किस समय का मिलन है? भगवान कृष्ण से गोपियाँ कभी यमुना के किनारे, कभी कुंज-वन में मिलती थीं। गदाधर कहते हैं – यह स्नान के समय का मिलन है क्या? तुम सब मिलने आयी हो? तात्पर्य यह है कि ईश्वर जब नरदेह धारण करके आते हैं, न ! उनका आकर्षण ही ऐसा रहता है।

भगवान राम ने भक्तों की इच्छा पूर्ण की थी। जैसा भक्त चाहता है, वैसी भगवान लीला करते हैं। जब श्रीराम अभी छोटे से बालक हैं, मुश्किल से घुटनों के बल अभी चल पा रहे हैं। भगवान शंकर की इच्छा हो रही है कि चलकर के श्रीराम का दर्शन करें। योगी के रूप में भगवान शंकर अयोध्या में महाराज दशरथ के महल में पहुँचते हैं। योगी देखकर के कोई उन्हें रोकता नहीं है, वे सीधे महल में प्रवेश कर जाते हैं। श्रीराम घुटनों के बल चलते हुए उनकी ओर देखते हुए इशारे से कहते हैं – शंकरजी महाराज ! कैसे हैं? आनन्द में तो हैं? भगवान शंकर कहते हैं – बस प्रभु ! आपके दर्शन के लिए आया हूँ। श्रीराम ने कहा – कैसे, प्रसन्न तो हुए? गद्‌गद् होकर भगवान शंकर कहते हैं – प्रभु ! आपका यह स्वरूप देखकर बड़ा आनन्द हो रहा है। आपने जो पीले रंग का कुर्ता पहना है, आपके श्यामल शरीर में पीले रंग का कुर्ता बड़ा सुन्दर दिखाई दे रहा है। शंकरजी कहते हैं –

पीत झगुलिया तनु पहिराई।
जानु पानि बिचरनि मोहि भाई।।१/१९८/११

आपने जो पीले रंग का कुर्ता पहना है प्रभु ! आप घुटने के बल चलते हुए मेरे पास आइये। भगवान श्रीराम शंकरजी की इच्छा पूर्ण करने के लिए चलते हुए उनके पास पहुँच गये। श्रीराम कहते हैं – शंकरजी महाराज ! अब तो प्रसन्न हुए? भगवान शंकर बार-बार प्रणाम कर कहते हैं – प्रभु ! आपने मेरी इच्छा पूर्ण की और चले गये।

अब कागभुसुंडीजी पहुँचे। कागभुसुंडीजी तो कौए के रूप में थे। उनके लिए तो कोई रोक-टोक है नहीं, वे सीधे दशरथजी के महल में पहुँच गये। भगवान राम उन्हें देखते हुए इशारे से कहते हैं – कहो भुसुंडी ! आनन्द में हो तो? कागभुसुंडीजी ने कहा – बस प्रभु ! भगवान राम ने कहा – कहो, क्या बात है? कागभुसुंडी हैं भक्ति के आचार्य ! वे कहते हैं – प्रभु ! आपने जो पीले रंग का कुर्ता पहना है न ! ये तो बड़ा मोटा है, इससे आपका श्यामल शरीर ठीक-ठीक दिखाई नहीं दे रहा है। भगवान ने इशारे से कहा – कहो तो निकाल दूँ। कागभुसुंडी कहते हैं – प्रभु ! ये आपकी माया ! ये कुर्ता है आपकी माया ! हम तो आपको भी देखना चाहते हैं, आपकी माया को भी देखना चाहते हैं। इस माया को दूर करने का काम तो ज्ञानी लोग करते हैं। हम तो आपको देखना चाहते हैं और ये भी चाहते हैं कि आपकी माया जितनी पतली रहे उतना ही अच्छा

है। आप भी दिखें, आपकी माया भी दिखती रहें। बस भक्त की इच्छा पूर्ण करनी है। भगवान घुटने के बल चलते हुए माँ कौशल्याजी के पास चले गये। ईशारे से दिखा रहे हैं, मानों बड़ी गर्मी लग रही है। माँ ने देखा – अरे बच्चे को तो पसीना आ गया ! तुरन्त वह पीला कुर्ता उतारती हैं और झीने-झीने रंग का कुर्ता जो है, पहना देती हैं। पहन करके फिर से श्रीराम घुटने के बल चलते हुए पहुँच गये कागभुसुंडीजी के पास। कहते हैं – कहो भुसुंडी ! अब प्रसन्न हुए तो? कागभुसुंडीजी प्रसन्न होकर कहते हैं – प्रभु ! जैसा मैं चाहता था, बिल्कुल वैसा ही मिला और क्या कहते हैं?–

पीत झीनि झगुली तन सोही।

किलकनि चितवनि भावति मोही।। ७/७६/७

प्रभु ! आपने जो झीने-झीने रंग का कुर्ता पहना है, उससे आपका अपूर्व सौंदर्य दिखाई दे रहा है। आप भी दिखाई दे रहे हैं, आपकी माया भी दिखाई दे रही है। प्रभु ! आप बच्चे जैसे किलकारी लगाते हैं, वैसे किलकारी लगाइये न ! **किलकनि चितवनि भावति मोही** – और भगवान भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए किलकारी लगाने लगे। गद्‌गद् हो जाते हैं कागभुसुंडी ! जैसा भक्त चाहता है, भगवान वैसी लीला करते हैं।

यहाँ श्रीरामकृष्ण देव के अवतार में भी देखते हैं, कामारपुकुर के आबाल-वृद्ध-वनिता जैसा चाहते हैं, गदाधर वैसी लीला करते हैं, नाटक करते हैं, गाना गाकर के सुनाते हैं, नृत्य करके दिखाते हैं। जैसा भक्त चाहता है, वैसी लीला करते हैं। यहाँ तक कि भक्त अपने प्रेमपाश में भगवान को बाँध लेता है। ऐसा बाँधता है कि भगवान कोशिश करके भी छुड़ा नहीं पाते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २०० का शेष भाग

इसमें स्वामीजी की सहयोगी श्रीमती लिगेट ने आर्थिक सहायता की। अर्थाभाव के कारण स्वामीजी की छोटी-सी मूर्ति लगाने की योजना थी, लेकिन श्रीमती लिगेट ने स्वयं ही बड़ी मूर्ति लगाने का प्रस्ताव दिया। इस प्रस्ताव से निवेदिता ने प्रसन्न होकर श्रीमती लिगेट को लिखा – ''उतनी बड़ी मूर्ति बहुत ही सुन्दर रहेगी। ऐसी मूर्ति के रहने से विवेकानन्द का मन्दिर बहुत ही भव्य दृष्टिगोचर होगा और इस घटना की युगों तक प्रशंसा की जायेगी।''

मूर्ति-निर्माण कहाँ और कैसे?

स्वामीजी की संगमर्मर की मूर्ति का निर्माण भारत के जयपुर, राजस्थान में किया गया। मूर्ति बनाते समय मूर्तिकार के मनोभाव और उसकी स्वामीजी के प्रति श्रद्धा के सम्बन्ध में भी एक बड़ी विलक्षण घटना का उल्लेख मिलता है, जिसे भगिनी निवेदिता ने उल्लेख किया है। वे लिखती हैं – ''मूर्तिकार ने अपना कार्य प्रारम्भ करने के पहले संगमर्मर के पत्थर के समक्ष एक छोटी-सी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने उस संगमर्मर पत्थर में विद्यमान स्वामीजी से बड़े ही कातरता से प्रार्थना की – 'हे स्वामीजी ! आप कृपा कर मेरे हाथों से अभिव्यक्त हो जाइये।' वे प्रातः ८ बजे से लेकर सन्ध्या ७.३० तक लगातार कार्य करते हैं। केवल दोपहर में भोजन का अवकाश लेते हैं। उन्होंने मुझे सन्देश भेजवाया है कि यदि कार्य सबके लिये सन्तोषजनक नहीं रहा, तो वे इसके लिये एक पैसा भी पारिश्रमिक नहीं लेंगे। वे सब रुपया वापस कर देंगे।''

स्वामीजी के मन्दिर का कार्य स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज देख रहे थे। कहा जाता है कि वे उस समय स्वामीजी के चिन्तन-मनन में ही तन्मय रहा करते थे। उस समय वे सदा स्वामीजी के बारे में ही चर्चा करते और उनका ध्यान करते थे। विज्ञानानन्दजी महाराज उस समय प्रयागराज में निवास करते थे। वे प्रायः भारद्वाज आश्रम में जाया करते थे तथा वहाँ विराजित सप्तर्षियों की मूर्तियों को बड़े ध्यान से देखा करते थे। श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी को सप्तर्षि-मण्डल से अवतरित ऋषि बताया था। विज्ञानानन्द जी महाराज ने अपने कक्ष में सप्तर्षियों का एक तैलचित्र रखा था। वे बार-बार कहते थे – 'स्वामीजी तो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विद्यामान हैं। यद्यपि उनका निवास स्थान सप्तर्षि मण्डल में है।'

इन सब विषम परिस्थितियों और विलक्षण घटनाओं की स्मृति के साथ नीचे के तल में स्वामीजी की संगमर्मर मूर्ति और ऊपर तल में ओंकार मन्दिर २८ जनवरी, १९२४ को लोकार्पित हुआ, जो विश्व के दर्शनार्थियों में प्रेरणा और आध्यात्मिक ऊर्जा का केन्द्र है। (दूसरे मन्दिर की चर्चा अगले किसी अंक में करेंगे।) ○○○

आनन्द ईश्वर के नाम से आता है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हम सबके जीवन में ऐसा होता है कि सब कुछ होते हुए कुछ अच्छा नहीं लगता है। ऐसा क्यों होता है? किसी से मतभेद हो गया, कोई विपरीत घटना घटी, तब हमारा मन समता में नहीं रहता। तब प्रिय लगनेवाली चीज भी अच्छी नहीं लगेगी। यद्यपि शरीर और मन से मिलनेवाला सुख सीमित रहता है। वास्तव में मन की अनुकूलता सुख और प्रतिकूलता दुख लगती है। जैसे दूध में नींबू पड़ने से दूध फट जाता है ऐसे ही अपने विपरीत स्वभाव वालों को देखकर हमारा मन दूषित-कलुषित हो जाता है। इंद्रियों से जो सूचना हमें मिलती है, उसी के आधार पर हमारा स्वभाव बनता है। अपने मन से ही हमारा स्वभाव देखा जा सकता है। हमारे मन में क्या है, इसे हम ही जान सकते हैं। आसक्त होकर कार्य करने से कष्ट होता है।

वस्तु और व्यक्ति के विषय में हम जानें कि इसका मूल क्या है? संसार की मूल प्रकृति क्या है? जैसे लोहा का मूल गुण है कड़ा होना। वह कड़ा रहता है। इसी प्रकार जब भी हम जप-ध्यान और प्रार्थना करते हैं, तब ईश्वर के बारे में जानना चाहिए। ईश्वर के स्वभाव के बारे में जानना चाहिये। जिसे हम जानना चाहते हैं, वह मनुष्य के पास है, कहीं दूर नहीं। संसार अनित्य है, जब तक यह भाव आपके मन में नहीं आता, तब तक हमारा मन चंचल होगा ही। हम लोग मुँह से बोलते हैं, संसार अनित्य है, लेकिन संसार को सत्य, नित्य समझते हैं। संसार अनित्य है और भगवान सत्य हैं, ऐसा भाव जब तक मन में नहीं आता, तब तक मन चंचल ही होगा। अत: व्यक्ति को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा अनासक्त होकर कर्म करने का अभ्यास करना चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बार-बार कहा है।

भक्त को सदा भगवान का नाम-स्मरण करते रहना चाहिये। भगवान से प्रार्थना के द्वारा बातचीत करने का प्रयास करना चाहिये। इससे वे जल्दी सुनते हैं।

हमारी सभी क्रियायें इच्छा से होती हैं। हमारा मन भी एक गोल बाजार है। हम जितना मन को समझाते हैं, उतना मन उथल जाता है, मन चंचल हो जाता है। मनुष्य अपने मन का गुलाम हो जाता है। वस्तु-व्यक्ति-स्थान में हमारा मन बहुत अटक जाता है। जब भी मनुष्य संसार में आयेगा, तो उसमें ये सब गुण रहते हैं। जो साधक प्रयत्न करके मन को साध लेते हैं, वे अपने मन की क्रियाओं को जानने लगते हैं। वे हैं योगीपुरुष। मन को मन की आँखों से ही देखा जा सकता है। दुख और सुख हम मन से ही बोध करते हैं। जब हम मन को अध्यात्म में लगाते हैं, तो वह ईश्वरोन्मुखी होता है। जब हम भौतिक वस्तुओं में लगाते हैं, तो उसकी रुचि विषयों में हो जाती है। तब वह विषयों की प्राप्ति और सुख को चाहता है, पर उसमें उसे आनन्द नहीं मिलता है। क्योकि आनन्द तो ईश्वर के नाम से ही आता है। सुख-दुख के अनुभव से हम जब शान्त होकर भगवान की ओर जाते हैं, तब हमें ईश्वर की अनुभूति होने लगती है। हमारी दुर्बलताओं के कारण हम ईश्वर की अनुभूति नहीं कर सकते। इसलिए ईश्वर की उपासना करने से हमारी दुर्बलतायें सब चली जाती हैं।

हमारी आत्मा चैतन्यस्वरूप है यानि उसमें चेतना बुद्धि है। अनित्य हमारा शरीर है। हम नहीं रहेंगे, एक दिन मर जायेंगे, किन्तु हमारी आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होती। संसार से विरक्ति का नाम वैराग्य है। वैराग्य के बिना वस्तुओं का आकर्षण नहीं मिटेगा। हममें आसक्ति जब रहती है, तब हमको लगता है कि ये सब संसार हमसे कहीं चला नहीं जाये। समय सबको पुराना करता है। या तो संसार नष्ट हो जायेगा या हमारा शरीर नष्ट हो जायेगा। तब जल्दी इसका अच्छा उपयोग करना चाहिए। नहीं तो समय निकल जायेगा। प्रतिदिन हमारे मन में यह भाव बना रहे कि हमारा जीवन स्थायी नहीं हैं, एकमात्र परमात्मा ही सत्य है, तभी हम साधना में आगे बढ़ सकेंगे और हमें शान्ति मिलेगी। ○○○

भगवान बुद्धदेव जयन्ती विशेष

महात्मा बुद्ध का जीवन और सन्देश

डॉ. जया सिंह, रायपुर

बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि।
संघ शरणं गच्छामि। दानं शरणं गच्छामि।

हे अनन्त जीवन ! हे परम मृत्यु ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ! तुम अपनी अग्नि से मेरे निर्वापित दीप को जलाने दो। मेरे भ्रू पर अपनी महिमा चिह्नित करके तुम मेरी लज्जा को सर्वदा के लिए मिटा दो।

तुम्हारे चरण रूपान्तरकारी अग्नि हैं,
जो मेरी खोट को स्वर्ण बना देगी।
मेरे भीतर की सारी कलौंस
आग में भस्मीभूत हो जाए,
और भ्रमजाल विदीर्ण हो उठे।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लिखी ये स्तुति, भगवान बुद्ध के दर्शन को चरितार्थ करती है।

गौतम बुद्ध का जन्म ५६३ ईस्वी पूर्व इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रीय शाक्य कुल के राजा शुद्धोधन के घर मध्य शाक्य गणराज्य की तत्कालीन राजधानी कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी में हुआ, जो वर्तमान में नेपाल में स्थित है। यह एक तराई क्षेत्र में कपिलवस्तु और देवदह के मध्य नौतनवा स्टेशन से ८ मील दूर पश्चिम में रूक्मिन देई नामक स्थान के पास है। कपिलवस्तु की महारानी महामाया देवी को अपने मायके देवदह जाते समय रास्ते में ही प्रसव पीड़ा हुई और वहीं पर एक बालक को उन्होंने जन्म दिया। इस शिशु का नाम रखा गया सिद्धार्थ। सिद्धार्थ का अर्थ है, जो सिद्धि प्राप्ति के लिये जन्मा हो। गौतम गोत्र में इन्होंने जन्म लिया, इसलिए वे गौतम कहलाए।

माना जाता है कि सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद ही उनकी माता की मृत्यु हो गयी। उनकी मौसी और शुद्धोधन की दूसरी रानी महाप्रजावती, जिन्हें गौतमी कहा जाता है, उन्होंने सिद्धार्थ का लालन-पालन किया। जन्म-समारोह में एक साधु द्रष्टा आसित ने अपने पर्वत के निवास से घोषणा की कि यह बालक या तो एक महान राजा या महान पवित्र पथ-प्रदर्शक बनेगा।

सिद्धार्थ ने गुरु विश्वामित्र से वेद और उपनिषद की शिक्षा ली, साथ ही राज-काज और युद्ध विद्या की शिक्षा प्राप्त की। कुश्ती, धनुर्विद्या, घुड़सवारी और रथ चलाने में कोई उनके समतुल्य नहीं था। सोलह वर्ष की आयु में सिद्धार्थ का विवाह योशधरा से हुआ। सिद्धार्थ पिता द्वारा ऋतु अनुरूप महल में यशोधरा के साथ रहने लगे, जहाँ उनके पुत्र राहुल का जन्म हुआ। किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके मन में वैराग्य की उत्पत्ति होने लगी। वे सम्यक् सुख शान्ति के लिए, राज्य का मोह छोड़कर तपस्या के लिए निकल गए। राजगृह पहुँचकर उन्होंने भिक्षा माँगी। वे भ्रमण करते हुए आलार कालाम और उद्दक रामपुत्र के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने योग-साधना की शिक्षा ली। समाधि लगाना सीखा। किन्तु इतने में भी उन्हें संतोष नहीं प्राप्त हुआ। वह उरुवेला पहुँचे और वहाँ भाँति-भाँति तपस्या की। सबसे पहले सिद्धार्थ ने केवल तिल-चावल खाकर तपस्या की। इसके पश्चात् आहार लेना बन्द कर दिया। पूरा शरीर सूख गया। ऐसा करते पूरे छह वर्ष व्यतीत हो गए, किन्तु सिद्धार्थ की तपस्या सफल नहीं हुई।

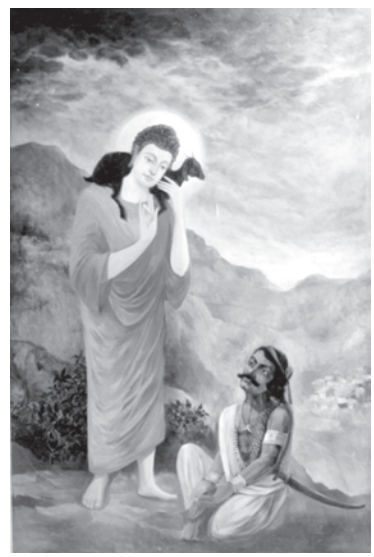

एक बार की बात है। एक दिन कुछ महिलायें किसी नगर से लौट रही थीं। वे जहाँ से निकलीं, वहाँ सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक स्वर सिद्धार्थ के कानों तक पहुँचा – वीणा के तारों को ढीला न छोड़ो, ढीला होगा, तो उनका स्वर सुरीला नहीं निकलेगा, किन्तु तारों को इतना भी न कसा जाए कि वे टूट जाएँ। ये बात सिद्धार्थ के हृदय को स्पर्श कर गई। उन्होंने माना कि नियमित आहार-विहार से ही योग भी सिद्ध होता है, किसी भी बात की अति ठीक

नहीं है। कहा भी गया है – अति सर्वत्र वर्जयेत्। किसी भी जप, तप, साधन के लिए मध्यम मार्ग ही उचित है। इस हेतु कठोर तपस्या करनी पड़ती है।

महात्मा बुद्ध ने प्राणी जगत को तत्त्व-ज्ञान दिया। इसे कई छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से समझा जा सकता है। संसार में दुख है, संसार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसे कोई-न-कोई दुख न हो। इसे बुद्ध ने चार आर्य सत्य के रूप में बताया – दुख है, दुख का कारण है। दुख का निदान है। वह मार्ग है, जिससे दुख का निदान होता है। किसा गौतमी की इस प्रकार दुख से निवृत्ति हुई थी।

किसा गौतमी और भगवान बुद्ध

किसा गौतमी नामक युवती का श्रावस्ती के एक धनाढ्य व्यापारी से विवाह हुआ। उसका एक वर्ष का बालक बीमार हुआ और चिकित्सा से पहले ही मर गया। इस दुख से गौतमी पागल हो गई और बच्चे को गोद में लेकर श्रावस्ती की गलियों में घूमने लगी। जो भी मिलता, उससे बच्चे को जीवित करने की प्रार्थना करती। कुछ लोग मुस्कुराकर आगे बढ़ते, तो कुछ उसकी बात पर ध्यान न देते। एक बुद्धिमान व्यक्ति मिला, उसने कहा – किसा गौतमी ! तुम्हारे बच्चे को एक ही व्यक्ति जीवित कर सकता है, वे हैं बुद्ध, जो इस समय जेतवन विहार में ठहरे हुए हैं। किसा गौतमी बुद्ध की शरण में गयी और मृत बालक को उनके चरणों के निकट रखकर उनसे अपने दुर्भाग्य की बात कही।

बुद्ध ने किसा गौतमी की बात को धीरज से दयापूर्वक सुना और कहा, ''बहन, मैं तुम्हारे दुख की चिकित्सा करूँगा। तुम श्रावस्ती चली जाओ और वहाँ से किसी ऐसे घर से सरसों का एक दाना माँग लाओ, जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।''

किसा गौतमी को धीरज बँधा और वह सरसों का दाना लाने चल पड़ी। पहले ही घर में उसने आवाज लगाई ''बुद्ध ने मुझसे ऐसे घर से एक सरसों का दाना मँगवाया है, जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। मुझे सरसों का एक दाना देने की कृपा करें।

घर के सदस्य ने कहा ''सरसों तो बहुत है, तुम ले जाओ, पर इस घर में अनेक की मृत्यु हो चुकी है।'' वह घर-घर गई, उसे यही उत्तर मिला।

अब उसकी समझ में आ गया कि हर प्राणी तो मरता ही है। किसा गौतमी यह समझ जाये, यही बुद्ध चाहते थे। यह समझते ही वह बच्चे को श्मशान घाट ले गयी और शव का अन्तिम संस्कार कर विहार लौट आई। गौतमी बोली, नहीं, अब अन्य किसी घर में नहीं जाऊँगी। जो पाठ आप मुझे पढ़ाना चाहते थे, वह मेरी समझ में आ गया। मुझे लगा कि मृत्यु मेरे ही घर हुई है। गौतमी ने बुद्ध से पूछा सत्य क्या है? तब बुद्ध ने कहा, मनुष्यों का संसार हो या देवताओं का, इसकी हर वस्तु अनित्य है।

बुद्ध कहते थे, मानव को यह अवश्य समझना चाहिए कि कोई भी दुख सदैव नहीं रहता है और उसे समाप्त किया जा सकता है। इसलिए मानव को बुद्ध द्वारा बनाए गए सन्मार्ग यानि आष्टांगिक मार्ग को समझना आवश्यक है। पंचशील अर्थात् हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना और निन्दा न करना। इनका पालन करना जीवन को सहज बनाने में सहायक होता है। आष्टांगिक मार्ग हैं – १. सम्यक् दृष्टि (अन्धविश्वास तथा भ्रम से रहित। २. सम्यक् संकल्प (उच्च तथा बुद्धि युक्त) ३. सम्यक् वचन (नम्र, उन्मुक्त, सत्यनिष्ठ) ४. सम्यक् कर्मान्त (शान्तिपूर्ण, निष्ठापूर्ण, पवित्र) ५. सम्यक् आजीव (किसी भी प्राणी को आघात या हानि न पहुँचाना) ६. सम्यक् व्यायाम (आत्म-प्रशिक्षण एवं आत्म-निग्रह) ७. सम्यक् स्मृति (सक्रिय सचेत मन) ८. सम्यक् समाधि (जीवन की यथार्थता पर गहन ध्यान)।

सम्यक् दृष्टि पथ की प्रकाशिका मशाल होगी। सम्यक् उद्देश्य उसके पथ-प्रदर्शक होंगे। सम्यक् वचन पथ में निवास हेतु उसके आश्रय-स्थल होंगे। उसकी पद-गति सीधी होगी, क्योकि यह सम्यक् आचार है। जीविका उपार्जन की विधि ही उसका अनुरंजन होगी। प्रयत्न उसके चरण होंगे, सम्यक् विचार उसकी श्वास होगी और शान्ति उसके पदचिह्नों का अनुसरण करेगी।

३५ वर्ष की आयु में एक बार असुरों के बीच घिरे ध्यान मुद्रा में वैशाखी पूर्णिमा के दिन सिद्धार्थ पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान में स्थित थे। बुद्ध ने बोधगया में निरंजना नदी के तट पर कठोर तपस्या की और सुजाता नामक महिला के हाथों खीर खाकर व्रत तोड़ा। पास के गाँव की एक स्त्री सुजाता को पुत्र हुआ। वह पुत्र-प्राप्ति के लिए एक पीपल के वृक्ष से मनौती पूरी करने के लिये सोने के थाल में गाय

के दूध की बनी खीर भरकर पहुँची। वहाँ सिद्धार्थ ध्यानस्थ थे। उसे लगा कि वृक्षदेवता ही मानो पूजन के लिये शरीर रूप में बैठे हैं। सुजाता ने बड़े आदर पूर्वक सिद्धार्थ को खीर भेंट की और कहा जैसे मेरी मनोकामना पूरी हुई, उसी तरह आपकी भी हो। उसी रात ध्यान लगाने पर सिद्धार्थ की साधना सफल हो गयी। उन्हें सच्चा बोध प्राप्त हुआ। तभी से सिद्धार्थ बुद्ध कहलाये। जिस पीपल के वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ को बोध हुआ, वह बोधि वृक्ष कहलाया और गया का समीपवर्ती स्थान बोधगया के नाम से प्रसिद्ध हो गया। बुद्ध ८० वर्ष की आयु तक अपने धर्म का प्रचार सरल लोकभाषा पाली में करते रहे। यही सरलता लोकप्रियता में परिवर्तित होने लगी।

बुद्ध चार सप्ताह तक बोधिवृक्ष के नीचे रहकर धर्म के स्वरूप का चिन्तन करने के पश्चात् बुद्ध-धर्म का उपदेश प्रदान के लिये निकल पड़े। आषाढ़ मास की पूर्णिमा को वे काशी के पास मृगदाव पहुँचे, जो अभी सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। यहीं पर उन्होंने सबसे पहला धर्मोपदेश दिया और अपने प्रथम पाँच मित्रों को अपना अनुयायी बनाकर उन्हें धर्म प्रचार करने के लिये भेज दिया। बुद्ध की विमाता महाप्रजापति गौतमी को सर्वप्रथम बौद्ध संघ में प्रवेश मिला। आनन्द बुद्ध का प्रिय शिष्य था। बुद्ध आनन्द को ही सम्बोधित करके अपने उपदेश देते थे। एक बार बुद्ध के शिष्यों ने उनसे किसी व्यक्ति के चमत्कार के बारे में कहते हुए उनके सामने एक कटोरी रखी और बताया कि इस कटोरी को वह व्यक्ति हाथ न लगाते हुए ऊपर से उतार लाया है। बुद्ध देव ने उस कटोरी को पैरों तले रौंदते कहा, ''चमत्कारों को अपनी धर्मनिष्ठा का आधार मत बनाओ। केवल शाश्वत तत्त्वों में ही सत्य को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करो''। बुद्ध ने उन्हें हृदय के सच्चे प्रकाश का – आत्मा के प्रकाश का उपदेश दिया। इसी प्रकाश के सहारे चलना पूर्णतया सुरक्षित होता है। चमत्कार तो केवल विध्न ही हैं, जिन्हें हटा देना चाहिए।

एक बार एक शिष्य ने कहा – हे प्रभु ! मुझे मनन का उपदेश दीजिए, ताकि मैं स्वयं को उसमें लगा सकूँ और मेरा मन पवित्र भूमि के स्वर्गलोक में प्रविष्ट हो सके। बुद्ध ने उत्तर दिया – मनन पाँच प्रकार के होते हैं। पहला मनन प्रेम का है, जिसमें तुम्हें अपने हृदय को इस प्रकार समायोजित कर लेना चाहिए, तुम समस्त प्राणियों की समृद्धि और कल्याण की कामना करो और जिसमें तुम्हारे शत्रुओं के लिये सुख की कामना भी समाहित हो। दूसरा मनन करुणा का है, जिसमें तुम समस्त उत्पन्न प्राणियों की पीड़ाओं का विचार उनके दुखों और चिन्ताओं की स्पष्ट कल्पना के साथ इस प्रकार करते रहो कि तुम्हारी आत्मा में उनके लिए गहन करुणा का संचार हो जाए। तीसरा मनन आनन्द का है, जिसमें तुम दूसरों की समृद्धि की आकांक्षा करते हो और उनको आन्दित देखकर आनन्दित होते हो। चौथा मनन अपवित्रता का है, जिसमें तुम व्यभिचार के दुष्परिणामों पर एवं पाप और रोगों के प्रभावों पर विचार करते हो। प्राय: क्षणिक सुख भी कितना क्षुद्र होता है तथा इसका परिणाम भी कैसा मर्मान्तक होता है। पाँचवा मनन – प्रशान्ति का है, जिसमें तुम प्रेम और घृणा, आतंक और उत्पीड़न, धन और दरिद्रता से ऊपर उठ जाते हो और स्वयं अपने भाग्य पर तटस्थ प्रशान्ति और पूर्ण धैर्य से विचार करते हो।

भगवान बुद्ध ने संसार को उपदेश दिया – ''अपनी स्वार्थ पूर्ण भावनाओं का उन्मूलन कर दो, स्वार्थपरता की ओर ले जानेवाली सारी बातें नष्ट कर दो। पत्नी-पुत्र, परिवार आदि बन्धनों तथा सांसारिक प्रपंचों से दूर रहो और सम्पूर्णतया स्वार्थशून्य बनो।''

पालि सिद्धान्त के महापरिनिर्वाण सूक्त के अनुसार ८० वर्ष की आयु में बुद्ध ने घोषणा की कि वे शीघ्र ही परिनिर्वाण के लिए जायेंगे। उन्होंने अपना अन्तिम भोजन कुण्डा नामक लोहार से प्राप्त भिक्षा में ग्रहण किया, जिससे वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गए। बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द को निर्देश दिया कि वह कुण्डा को समझाए कि उसने कोई गलती नहीं की है, यह भोजन अतुल्य है।

भगवान बुद्ध ने लोगों को मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने दुख, उसके कारण और निवारण के लिये अष्टांगिक मार्ग सुझाया। अहिंसा पर उन्होंने अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने यज्ञ और पशु-बलि की निन्दा की।

महात्मा बुद्ध ने सनातन धर्म की कुछ संकल्पनाओं का प्रचार किया था – जैसे, अग्निहोत्र और गायत्री मन्त्र-ध्यान और अन्तर्दृष्टि, मध्यमार्ग का अनुसरण तथा चार आर्य सत्य और अष्टांग मार्ग।

बुद्ध के धर्म-प्रचार से भिक्षुओं की संख्या बढ़ने लगी बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी उनके शिष्य बनने लगे। भिक्षुओं

शेष भाग पृष्ठ २१४ पर

बच्चों को मन्दिर क्यों जाना चाहिए?

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

हम मन्दिर क्यों जाते हैं? यह प्रश्न सदा हमारे सामने आता है। जैसे सभी बीमार होने पर डॉक्टर के पास जाते हैं, ठीक इसी प्रकार मन्दिर भी एक चिकित्सालय के जैसे होता है। जहाँ हम अपनी कुछ बुरी आदतें, जैसे बहुत क्रोध आना, किसी से ईर्ष्या करना, घमण्ड, अहंकार रूपी बीमारी को दूर करनेवाले किसी भक्त से, किसी विशेषज्ञ से मिलते हैं। इस बात पर हमें विश्वास करना ही होगा कि इन बीमारियों को दूर करनेवाले विशेषज्ञ मन्दिरों में ही मिलते हैं तथा ये बीमारियाँ इसलिए होती हैं कि भगवान के साथ हम अपना सम्बन्ध भूल चुके हैं। एक मन्दिर, पाठशाला की तरह है, जो हमें भगवान के विषय में बताता है। किसी भी पाठशाला का महत्त्व वहाँ से प्राप्त होनेवाली शिक्षा से होता है, न कि समय से पाठशाला पहुँचने में। ठीक वैसे ही किसी मन्दिर में जाना, घंटी बजाना, प्रणाम करना, स्वयं उपस्थित रहना केवल एक परम्परा को आगे बढ़ाना हो जाता है। जबकि इसका सार यह है कि अन्य भक्तों से भगवान को प्रेम करने का विज्ञान सीखा जाये। भगवान के साथ अपने भूले हुए सम्बन्ध को पहचान पाएँ। एक मन्दिर अपने आध्यात्मिक ज्ञान के बिना ऐसा ही है, जैसे एक पाठशाला का भवन, जहाँ बच्चों को पढ़ाई-लिखाई के बारे में कुछ नहीं बताया जाता। इसी मन्दिर या Temple को और अच्छे से समझते हैं और इसकी स्पेलिंग है TEMPLE जहाँ T का मतलब है टैगक्वालिटी अर्थात् शान्ति। मन्दिर चाहे कितनी भी भीड़ वाली जगह पर क्यों न हो, उसमें प्रवेश करते ही शान्ति का आभास होता है। वहाँ हम बैटरी को चार्ज करते हैं, पर मोबाईल के बैटरी को नहीं, शरीर और मन की बैटरी को। भगवान की उपस्थिति तथा मन्दिर में होने वाले निरन्तर नाम-जप से दिव्यता का अनुभव होता है। जो कारण हमारे अन्दर मानसिक और भावनात्मक शक्ति देकर जीवन की चुनौतियों से लड़ने के योग्य बनाता है। TEMPLE के E का मतलब है एजुकेशन, मन्दिर में होने वाले कार्यक्रमों से वहाँ आनेवाले भक्तों को भगवान के विषय में तथा स्वयं के विषय में ज्ञान होता हैं। जैसे हम कौन हैं? कहाँ से आये हैं? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? हम क्यों हैं? हमें क्या करना है? क्या नहीं करना है? ये सब भक्ति योग की विधि से हम बड़े सरल ढंग से समझ पाते हैं। M का मतलब है मेडिटेशन यानी मन्दिर हमें भगवान नाम-जप की ऐसी औषधी देते हैं, जिससे लालच, काम, क्रोध, ईर्ष्या रूपी कीटाणु दूर हो जाते है। ये कीटाणु मानव रूपी समाज में फैले हुए हैं, जो सभी समस्याओं की उत्पत्ति के कारण हैं। P अर्थात् प्योरिफिकेश। जन्म से ही आत्मा शुद्ध है यानी सत् चित् आनन्द है। मन्दिर में होने वाले अनुष्ठान हमारी उस आन्तरिक शुद्धि तथा उस चेतना को पुन: जागृत करने में हमारी सहायता करते हैं। इससे हम अन्दर से स्वार्थपूर्ण व्यवहार को छोड़कर दया, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर पाते हैं। L का मतलब Love प्यार। मन्दिर में जाकर मन को शान्ति मिलती है। वैसे आत्मा भगवान के प्रेम का अनुभव करती है। क्योंकि मन्दिर भगवान का घर है। इसलिए जब हम मन्दिर में होते हैं, तब हम भी भगवान के साथ शाश्वत दिव्य सम्बन्ध के कारण घर जैसी सहजता अनुभव करते हैं। यानी सच्चे प्रेम का, अपनेपन का। E का मतलब इंगेजमेन्ट। मन्दिर जाकर हमें अनेक अवसर मिलते हैं। हम अपनी इन्द्रियों को तन, मन, धन से, अनेक कार्यों के माध्यम से भगवान की सेवा में लगा सकते हैं। जैसे प्रसाद बनाना, हार बनाना, मन्दिर साफ-सफाई करना। इसी प्रकार अपनी शक्ति और गुणों को सुव्यवस्थित तरीके से भगवान की सेवा में लगा सकते हैं। इस प्रकार मन्दिर का वास्तविक अर्थ उसी के नाम में छुपा हुआ है।

बच्चो, मन्दिर जाने से तुम्हें शान्ति, शिक्षा, आध्यात्मिक-चिकित्सा, शुद्धता, प्रेम तथा सेवा मिलती है। मन्दिर जाने से तुम अपना शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति करके जीवन में सफल होगे।

तो बच्चो, तुम अब समझ ही गये होगे कि तुम्हें मन्दिर क्यों जाना चाहिए। ○○○

रामगीता (३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अभी श्रद्धेय स्वामीजी ने मोह और ममता का नाम लिया और यह प्रश्न भी हमारे-आपके सामने रखा कि अहं मुख्य है या मोह मुख्य है। श्रीरामचरितमानस में तो अनोखे ढंग से दोनों को ही महत्त्व दे दिया गया। एक ओर तो यह कहा गया कि सचमुच मनुष्य के जीवन में समस्त शोक आते हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं –

संसृत मूल सूलप्रद नाना।

सकल सोक दायक अभिमाना।। ७/७३/६

संसार का मूल और शोक देनेवाले में सबसे बड़ा कारण है मैं। यहाँ पर जो अभिमान है, उसे ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया। यहाँ पर कहते हैं –

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।। ७/१२०/२९

मोह ही समस्त विकारों के मूल में है और उसी से अनेक प्रकार की बुराइयाँ होती हैं। इसका अर्थ है कि अहं और मोह दोनों ही बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। पर दोनों में कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसका निर्णय करना सरल नहीं है, अत्यन्त कठिन है। उसे यों कह सकते हैं कि उसके लिए जो सर्वश्रेष्ठ शब्द कहा स्वामीजी महाराज ने वह समझने योग्य है कि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। माने सिक्के के दोनों ओर दो चित्र हैं, पर दोनों को देखकर कोई कहे कि इधर महत्त्वपूर्ण है कि उधर महत्त्वपूर्ण है, तो वह तो कुछ नहीं है। एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। अहम् और मोह दोनों के दोनों मनुष्य की सारी समस्याओं के मूल में हैं। अब आइए, थोड़ा मानस के प्रसंगों के माध्यम से उसे रखने की चेष्टा करें। क्योंकि चुटकुले और लतीफे तो मैं सुना नहीं पाऊँगा, वह तो आप लोग सुनने के बहुत अभ्यस्त हैं।

मानस के माध्यम से ही थोड़ा मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि मोह और अहंकार को किस रूप में श्रीरामचरितमानस में प्रस्तुत किया गया है। पहले तो दोनों का अन्तर आप समझ लें। वह अन्तर है अहम् क्या है? वह तो व्यक्ति का, जीव का सहज धर्म है। यही शब्द है रामायण में –

हरष बिषाद ग्यान अग्याना।

जीव धर्म अहमिति अभिमाना।। १/११५/७

मानो जीव संज्ञा तभी तक रहेगी, जब तक उसके साथ मैं रहेगा। इसे आप ऐसे समझ सकते हैं, आप जब अपना परिचय देते हैं, तो आप क्या कहते हैं? आप यही तो कहते हैं कि मेरा यह नाम है, मैं यह हूँ। आप किसी पद पर हैं, तो आप यह कहेंगे कि मैं यह हूँ। आपके पास कुछ विशेष है, तो आप कहेंगे मेरा है। इसका अभिप्राय यह है कि जीव के जीवत्व का सबसे बड़ा परिचय जो है, वह है मैं। मानो मैं के बिना तो एक क्षण भी आप मैं बोले बिना रह ही नहीं सकते। इसलिए बहुत सुन्दर वह महाभारत का प्रसंग है। आप लोग पढ़ना चाहते, तो आपसे अनुरोध करता, पर शायद वह आपको नीरस लगे। उसमें गोस्वामीजी ने इसका अनुभव किया। गोस्वामीजी का जन्म जिस काल में हुआ, उसके पहले जो महापुरुष उत्पन्न हुए, उन्होंने निर्गुण निराकार ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया, सगुण साकार का निषेध किया। इसका परिणाम कुछ लोगों के लिए कल्याणकारी था, तो अधिकांश लोगों के लिये वह केवल नकल का शाब्दिक विषय बन गया और उसका दुष्परिणाम समाज में होने लगा। गोस्वामीजी जी कभी-कभी उपदेश के रूप में और कभी-कभी फटकार के रूप में सावधान करते हैं सबको। वे दो दोहे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, जो दोहावली

रामायण में हैं। आप कल्पना कीजिए कि गोस्वामीजी गंगा के किनारे बैठे हुए हैं और एक अलखिया साधु को देखते हैं। साधुओं का एक ऐसा वर्ग जो गेरुआ वस्त्र पहनता है और हाथ में एकतारा या तम्बूरा लिए हुए दिखाई देता है। आजकल तो वे लोग नहीं दिखाई देते, पहले उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में दिखाई देते थे। वे पैरों और हाथों में घुँघरू बाँधकर और हाथ में खप्पर लिए हुए चलते थे। वे जो शब्द कहते हुए चलते थे। अलख निरंजन 'ब्रह्म अलख है, ब्रह्म निरंजन' है। तो गोस्वामीजी गंगा के किनारे बैठे रहे होंगे। उन्होंने देखा कि 'अलख निरंजन, अलख निरंजन' कहते हुए, वह साधु निकला। आज भी उस प्रकार के साधु यही शब्द दुहराते हैं। गोस्वामीजी ने थोड़ा ऐसे कठोर शब्दों का प्रयोग किया, जैसा वे बहुधा करने के अभ्यस्त नहीं हैं। संतों की बोलने की भाषा अलग होती है। गोस्वामीजी ने फटकार कर कहा, तू जो यह अलख अलख कह रहा है, यह क्या सत्य है? तुम्हारे मुँह से निकला शब्द क्या तुम्हारी अनुभूति है? क्या तुम सचमुच इसके द्वारा लोगों को ब्रह्म का दर्शन कराना चाहते हो? उनका व्यंग्य था कि भला तुम सोचो, तुम अलख कह करके वस्तुत: ब्रह्म के अलख रूप दर्शन नहीं कराना चाहते, बोध नहीं कराना चाहते, अपितु अपने को ही बखानना चाहते हो। इसका अर्थ क्या हुआ? अब अगर घुँघरू बाँधकर, हाथ में तम्बूरा लेकर अलख निरंजन गाते-नाचते हुए निकले, तो सब लोगों का ध्यान तो उसी की ओर जायेगा। व्यंग्य में उन्होंने कहा – अच्छा, यह अलख शब्द ब्रह्म को अदृश्य बनाकर निर्गुण में स्थित करना नहीं है, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना है। तब उन्होंने कहा – किसके विषय में बोल रहा है?

हम लखि लखहि हमार लखि

इतनी वस्तुएँ लखने की है, उसके बाद अलख की सोचो। हम माने मैं। हम लख और हमहि और हमार, मैं और मेरा, इन तीनों के बीच में एक ऐसी स्थिति है, उसकी ओर तुम ध्यान दो –

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जप नीच।।
दोहावली / १९

अगर सचमुच तुझे चाहिए कल्याण, तो राम-नाम का जप कर। यह क्या बकवास लगा रखा है। लोगों का ध्यान भंग कर रहा है, अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा है लोगों का। मानो एक वास्तविक तथ्य है, सत्य है कि कई बार व्यक्ति ऐसी बातें करता है कि लगता है कि वह उधर दिखना चाहता है, पर उसका उद्देश्य लोगों की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट करना होता है। इसमें गोस्वामीजी कहते हैं कि अलख तो तब सामने आयेगा, जब तीनों को तुम सही ढंग से लख लोगे। मैं कौन हूँ? जिसे हम मेरा कहते हैं, वह कौन और मैं और मेरा के बीच में जो एक सम्बन्ध जोड़ने वाला है वह कौन है? अगर तुम इसको समझना चाहते हो, तो राम नाम जप करो। उसका मूल तात्पर्य यह है कि वस्तुत: उस क्रिया-कलाप में भी जहाँ त्याग का प्रदर्शन हो रहा है, वैराग्य का प्रदर्शन हो रहा है, अलख ब्रह्म का उपदेश दिया जा रहा है, वहाँ पर भी मूल में केवल आत्मप्रदर्शन मात्र है और कुछ नहीं है। कामगीता में यही कहा गया कि अनेक बार व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि वह क्या कर रहा है। कुछ तो जानबूझ के करते हैं और कुछ तो बिना समझे ही करते हैं। जो बात करते हैं, उसका उद्देश्य वह नहीं होता, जो शब्दों में उनके द्वारा प्रगट होता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने एक अलख निरंजन वाले से तो यह कहा और दोहावली रामायण के दूसरे दोहे में दूसरा व्यक्ति जो ममता में ग्रस्त है, उससे कहा –

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।

तुम बार बार कहते हो, मेरा मेरा मेरा, तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है। इसके बाद के दोहे में जो वाक्य है –

कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी भजु राम।।
दोहावली / १८

अगर तुम इस पर विचार करोगे, तो इसका फल यह होगा कि तुम शान्त हो जाओगे। तुम श्रीराम का भजन करो, राम का भजन करने से धीरे-धीरे जैसे कोई दर्पण हो और दर्पण साफ न हो, तो उसमें आकृति ठीक से दिखाई नहीं देती, जल अगर गंदा हो, तो उसमें वस्त्र साफ नहीं होता। इसी तरह से भक्ति क्या है, जप क्या है? गोस्वामीजी विनय पत्रिका में कहते हैं। किसी ने कहा आपकी बहुत-सी बातें समझ में नहीं आतीं। उन्होंने कहा कि देखो भाई ! इसको समझने के लिए भी शुद्धता की आवश्यकता है। नहा लेने की शुद्धता नहीं, वस्त्रों की शुद्धता नहीं, तब?

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।

जब व्यक्ति का अन्त:करण भक्ति के जल से स्वच्छ हो जाता है, तब प्रयत्न नहीं करना पड़ता। बिना प्रयास के ही सब दिखाई देता है। तब?

तुलसीदास कह चिदबिलास जग बूझत बूझत बूझै।।

तुलसीदासजी ने कहा कि यह संसार जो है, वह चैतन्य का विलास है। पर इस चैतन्य का विलास व्यक्ति को धीरे-धीरे समझ में आता है।

मूल सूत्र और मानस के विविध पात्रों के माध्यम से इसी को प्रस्तुत करने की, समझने की चेष्टा की गई है। एक ओर उसमें घटनाओं का प्राधान्य है और दूसरी ओर जो प्राधान्य है, उसका पहला सूत्र इस रूप में देखें कि एक व्यक्ति वह है, जो चरित्र की दृष्टि से, आदर्श की दृष्टि से बड़ा श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा है। प्रतीत होने पर भी कामगीता में काम ने जो बात कही, वह यह थी कि जब व्यक्ति ने मुझे परास्त करके कभी जीत लिया और जीत लेने के बाद वह बड़ा प्रसन्न हो जाता है कि मैं काम का विजेता हूँ, तो मैं मुस्कुराता रहता हूँ। क्योंकि उसके विजय के पीछे मैं ही बैठा रहता हूँ। इसका सबसे बड़ा दृष्टान्त आप ढूँढ़े, एक तो रामायण के उन महान पात्रों की बात, जो महान से महान हैं और दूसरे पात्र वे हैं, जिन्हें हम खल के रूप में निन्दनीय पात्र के रूप में जानते हैं। मानो दोनों को सावधान रहना है। जो खल है, वह तो खल है ही, पर जो श्रेष्ठ है, उस श्रेष्ठ को कहीं भ्रम न हो जाये। लेकिन भ्रम हो ही जाता है। अब उसका सबसे बड़ा दृष्टान्त क्या है? नारदजी के लिए एक दोहा आया –

पुनि नारद कर मोह अपारा। ७/६३/८

नारदजी के जीवन में जो घटना घटित हुई, उसको संज्ञा दी गई मोह की। मोह का क्या अर्थ है? मोह का अर्थ अज्ञान नहीं है। अज्ञान का अर्थ है – न समझना। ज्ञान का अर्थ है जानना। मोह का क्या अर्थ है? मोह का स्वरूप अगर आप देखना चाहें और काम की विलक्षणता आप देखना चाहें, तो आप देवर्षि नारद के प्रसंग को पढ़ डालिए।

देवर्षि नारद हिमाचल के एक पवित्र स्थान में, जहाँ दिव्य जल का प्रपात है, वातावरण अत्यन्त शान्त है, बाल ब्रह्मचारी देवर्षि नारद, सब कुछ छोड़कर वीणा लिए हुए भगवान के गुणों का गायन करते हैं। मुनियों को उपदेश देते हैं, सदुपदेश देते हैं। बस देवर्षि नारद उस दृश्य को देखकर बड़े प्रभावित हुए और –

भएउ रमापति पद अनुरागा।

वे शान्त भाव से भगवान का ध्यान करने बैठ गये। नारदजी को एक शाप था। वह शाप दक्ष प्रजापति ने दिया था। हमारे यहाँ पुराणों की सारी कथाएँ जो हैं, वे बड़ी गम्भीर हैं। दक्ष प्रजापति जो ब्रह्मा की आज्ञा से सृष्टि का विस्तार कर रहे हैं, उसके मूल में भी कथा आती है कि ब्रह्मा ने पहले मन से जो मानस पुत्र उत्पन्न किए, नारदजी उन्हीं में से एक हैं। सनकादि भी उन्हीं में से हैं। ब्रह्मा से जब उन्होंने पूछा कि आपकी क्या आज्ञा है, तो उन्होंने कहा सृष्टि का विस्तार करो। उन्होंने कहा – महाराज इस विस्तार से लाभ क्या है? हमारे मन में विस्तार की इच्छा नहीं है और विस्तार का परिणाम तो सदा दुखदाई होता है। हम इस दिशा में आज्ञा चाहेंगे कि आप हमें सृष्टि के विस्तार की आज्ञा न दें। एक पक्ष यह है। ब्रह्मा ने कहा – ठीक है। आपकी रुचि नहीं है, तो मैं कैसे कहूँ कि आप सृष्टि का विस्तार कीजिए। तब उन्होंने सृष्टि के विस्तार के लिए दक्ष प्रजापति को चुना। दक्ष को सृष्टि के विस्तार का कार्य दिया गया। मानो समाज में दो पक्ष हैं। एक पक्ष है कि समस्याओं को उत्पन्न कर उसमें फँसने की क्या आवश्यकता है? इसमें फँसने पर दुख ही दुख तो है, इसलिए इसका त्याग कर दें। यह त्याग का पक्ष है। **(क्रमश:)**

जप में मन लगाने की प्रक्रिया – प्रभु का नाम जपने में पहले-पहल मन नहीं लगता है। लेकिन लगातार विधिवत बैठते रहने से मन से संकल्प-विकल्प करने का क्रम घटने लगता है और मन भी जप में लगने लगता है, इस तरह मन शुद्ध होने लगता है। संसार के संस्कारों को छोड़कर चिन्ताशून्य होने लगता है। फिर ऐसे शुद्ध मन में प्रभु के लिए जगह बनती है।

दीक्षामन्त्र को जपते रहना जरूरी – मरने की जरूरत नहीं है, दीक्षामन्त्र को जपते रहने की जरूरत है। हर घड़ी जपते रहने की कोशिश करते रहो, प्रभु से अपनी मुश्किलों के लिए प्रार्थनाएँ करो।

– स्वामी गहनानन्द जी महाराज

(मधु संचयन पुस्तक से)

मन्दिर शताब्दी विशेष

मन्दिर का इतिहास

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख शृंखला प्रकाशित की जा रही है।

मन्दिर शब्द का अर्थ है घर। आजकल यह शब्द देव स्थान, देवालय, पूजा अर्चना करने का स्थान के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग होता है। विभिन्न देवताओं के मन्दिरों को उनके नाम के साथ कहा जाता है, जैसे दुर्गा मन्दिर, शिवालय, अम्बिका सदन, दुर्गा निलयम् आदि। देवालयों, पूजा-स्थलों के लिए मन्दिर शब्द का प्रयोग ऋग्वैदिक काल से ही होता आया है। शतपथ ब्राह्मण (जो यजुर्वेद से सम्बन्धित ग्रन्थ है) में मन्दिर शब्द का प्रयोग मिलता है। यह इस बात का प्रमाण है कि मन्दिरों का निर्माण वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो गया था।

प्राचीन काल में महान ऋषियों के आश्रम होते थे, जिनमें उनके पूजा व ध्यान करने का स्थान अलग होता था। इस स्थान को ही देवल, देव ग्रह अथवा प्रासाद के नाम से जाना जाता था। कालान्तर में इन्हीं आश्रमों ने मठों, शक्ति पीठों व गुरुकुलों का रूप ले लिया। पुरातन काल में मुख्य रूप से शिव-मन्दिरों का निर्माण होता था। बाद में माता पार्वती, दुर्गा, माँ काली व विष्णु भगवान के मन्दिरों का निर्माण होने लगा। पहले मन्दिर छोटे आकार के तथा लकड़ी के बनाये जाते थे। कालान्तर में पत्थरों से विशाल मन्दिर बनाये जाने लगे। पत्थरों से मन्दिर-निर्माण आर्यों द्वारा प्रारम्भ किया गया।

हिन्दू धर्मग्रन्थों में मन्दिरों का उल्लेख मिलता है। रामायण महाकाव्य में माता सीता स्वयंवर से पूर्व अपने पिता के उपवन में बने माँ पार्वती की (गिरिजा सदन में) सखियों के साथ पूजा करने आती हैं –

तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई।।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा,
बरनि न जाइ देखि मनु मोहा।।

रा.च.मा. बालकाण्ड/२२७/२

यह गिरिजा-गृह माता पार्वती का मन्दिर ही है। अन्यत्र जब हनुमानजी लंका में सीता माता की खोज कर रहे हैं, वहाँ पर –

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मन्दिर तह भिन्न बनाना।।

(रा.च.मा. सुन्दरकाण्ड/४/८)

उन्हें राक्षस नगरी लंका में भी हरि-मन्दिर के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में भी श्रीरुक्मणी जी विवाह से पूर्व देवी के मन्दिर में पूजा करने जाती हैं। जहाँ से भगवान श्रीकृष्ण ने उनका हरण किया था।

आसाद्य देवी सदनं, धौत पाद कराम्बुजा।
अस्पृश्य शुचिः शान्ता, प्रविवेशाम्बिकान्तिकम्।।

(श्रीमद्भागवत १०/५३/४४)

श्रीभक्तमाल के सतयुग के भक्त श्रीचन्द्रहास की कथा में श्रीदुर्गा मन्दिर का उल्लेख मिलता है। इन प्रमाणों से मन्दिरों

की पौराणिकता प्रमाणित होती है।

मन्दिरों की संरचना व उसका महत्त्व

मन्दिर एवं उनमें स्थापित देव-मूर्तियाँ सकारात्मक आध्यात्मिक ऊर्जा के केन्द्र हैं। योगानन्द परहमंस जी की पुस्तक एक योगी की आत्मकथा में इस बात की चर्चा की गई है। जिस स्थान पर बहुत से लोग श्रद्धा से पूजा-अर्चना व प्रार्थना करते हैं, वे स्थान सकारात्मक ऊर्जा के केन्द्र बन जाते हैं। वहाँ जाने से उन मूर्ति आदि को नमस्कार करने से शान्ति का अनुभव होने लगता है। एकाग्रता बढ़ जाती है तथा व्यग्रता एवं तनाव कम होते हैं। भारत के लगभग सभी प्राचीन व प्रसिद्ध मन्दिरों में लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ इसी बात का प्रमाण है।

मन्दिर निर्माण की शैलियाँ प्रचलित हैं –

१. नागर शैली

२. द्रविण शैली

३. मिश्र शैली (उपरोक्त दोनों प्रकार की मिली-जुली शैली)

नागर शैली – यह शैली उत्तर भारतीय आर्यों की मन्दिर-निर्माण-शैली है। इसमें मन्दिर के तीन मुख्य भाग होते हैं। (अ) मुख्य द्वार (ब) गर्भ गृह (स) शिखर। मुख्य द्वार से मन्दिर में प्रवेश करके गर्भगृह में पहुँचते हैं। गर्भगृह में इष्टदेव की मूर्ति होती है। मन्दिर की छत ऐसे बनाई जाती है कि ऊपर की ओर पतली होती जाती है। सबसे ऊपर एक कलश लगा होता है तथा एक शूल लगा होता है। छत नुकीली होने का एक यह लाभ भी होता है कि कोई इष्ट देव की प्रतिमा के ऊपर खड़ा नहीं हो सकता। इस प्रकार की छत पिरामिड का लाभ प्रदान करती है। इसके नीचे रहने से एकाग्रता व शान्ति स्वाभाविक ही रहती है, फिर इष्टदेव के सान्निध्य की भावना हो, तो क्या कहने !

द्रविण शैली – शैली में मन्दिर का प्रवेश द्वार विशाल एवं भव्य होता है, इसे गोपुर भी कहते हैं। गर्भगृह एवं उसमें स्थापित प्रतिमा की प्रदक्षिणा करने के लिए परिक्रमा पथ होता है। द्रविण शैली के मन्दिरों की छत को विमान कहते हैं। प्राय: इस शैली के मन्दिरों में विशाल प्रांगण होता है। इस प्रांगण में प्राय: जलकुण्ड इत्यादि बने रहते हैं।

इन शैलियों के अलावा नेपाल व इण्डोनेशिया जैसे देशों में दैगोड़ा शैली के मन्दिर भी बनाये जाते हैं। भगवान बुद्ध के प्रसिद्ध स्तूपों के बनने के बाद मन्दिर की स्वतन्त्र शैली विकसित हुई है, जिसमें मन्दिरों का ढाँचा एक स्वतन्त्र निर्मित ढाँचा होता है। उसके लिए कोई विशेष नियम नहीं होता।

भारतीय इतिहास का गुप्तकाल, चन्द्रगुप्त मौर्य व उसके वंशजों का शासन काल भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस समय में वास्तु कला का विकास अत्यधिक हुआ। इसी काल में प्राचीन मन्दिरों का पुनरुद्धार किया गया तथा कई भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ।

उपयोगिता – प्राचीन काल से ही मन्दिरों में पूजा-अर्चना के साथ-साथ पुराणों की कथायें हुआ करती थीं। जहाँ एक साथ हजारों श्रद्धालु भक्त एक साथ मिलकर कथा-श्रवण, प्रभु-नाम कीर्तन एवं अन्य धार्मिक गतिविधियों में भाग लिया करते थे। इससे उन्हें अनुपम शान्ति व प्रसन्नता मिलती थी। वास्तु के नियमानुसार निर्मित मन्दिर में इष्टदेव की मूर्ति के सामने खड़े होकर, विश्वात्मा की सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह अपने अन्दर अनुभव होता है।

यह इष्टदेव की कृपा व मन्दिर के पिरामिडनुमा शिखर का प्रभाव है। प्रसिद्ध मन्दिरों में अभी भी लाखों दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ इसी का प्रमाण है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी अध्ययन में यह पाया है कि विशाल पिरामिडनुमा ढाँचे के ऊपर की ओजोन परत में कोई छेद अथवा ह्रास नहीं पाया जाता है। वृन्दावन का भी बाँके बिहारी मन्दिर वास्तु का एक अनुपम नगीना है। उसका प्रभाव व चमत्कार विश्वविख्यात है। ○○○

पृष्ठ २०८ का शेष भाग

की संख्या बढ़ने पर बौद्ध संघ की स्थापना की गई। बाद में लोगों के आग्रह पर बुद्ध ने नारियों को भी संघ में लेने की अनुमति दे दी। यद्यपि इसे उन्होंने उतना अच्छा नहीं माना। भगवान बुद्ध ने 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' एवं लोक-कल्याणार्थ अपने धर्म का प्रचार करने हेतु भिक्षुओं को देश-विदेश में भेजा। अशोक आदि सम्राटों ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपनी अहम् भूमिका निभाई। बौद्ध धर्म बुद्ध देव की प्रत्यक्ष अनुभूति पर स्थापित है। उन्होंने कुछ सत्यों का अनुभव किया था। उन्होंने उन सब को देखा था, वे उन सत्यों के संस्पर्श में आये थे और उन्हीं का उन्होंने संसार में प्रचार किया। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (३४)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

यो वै न भगवैल्लब्धा बहुविवदते तथा।
स्तब्धो भवति तत्प्राप्येश्वरानन्दं च मोदते।।१२।।

– वैसे ही जिसे भगवान की प्राप्ति नहीं हुई है, वही भगवान के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार का विवाद करता है। जिसने भगवान का दर्शन कर लिया है, वह स्थिर हो, शान्त होकर ईश्वर-आनन्द का उपभोग करता है।

ऋते विवेक-वैराग्यं वृथा शास्त्रानुशीलनम्।
ऋते विवेक-वैराग्यं धर्मलाभोऽपि नैव च।।१३।।

– विवेक-वैराग्य के बिना शास्त्र-अध्ययन व्यर्थ है। विवेक वैराग्य के बिना धर्म-लाभ नहीं होता।

असदिदं तु सच्चेदमेवंविधं विचारणम्।
विहायासत्ततस्ताभ्यां सदवस्तोर्ग्रहणं पुनः।।१४।।
देहादेरन्य आत्मेति बुद्धिर्विवेक उच्यते।
ततो विषयवैतृष्ण्यं वैराग्यमभिधीयते।।१५।।

– यह सत् है और यह असत् है, ऐसा विचार करके सद् वस्तु का ग्रहण करना और शरीर अलग और आत्मा अलग है, ऐसी विचार-बुद्धि का नाम विवेक है, विषयों के प्रति वितृष्णा को वैराग्य कहा जाता है।

कविता

रामकृष्ण जगदीश्वर प्रभुवर

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

रामकृष्ण जगदीश्वर प्रभुवर, नरनिर्जर तुम चिदाकार ।
मायापाशविवर्जित नित तुम, नित्यमुक्त हो युगावतार ।।
भक्तानुग्रह इस जग आये, हरते हो पृथिवी का भार ।
निर्गुण-निराकार होकर भी, बन आये हो तुम साकार ।।
शरणागतवत्सल तुम हो प्रभु, ज्ञान-भक्ति के चिर आधार ।
सत्य-सनातन विभु व्यापक तुम, करते सभी धर्म स्वीकार।।
माया-मोह विनाशक तुम हो, कर्मबन्ध से करते पार ।
मेरे हिय में सदा बसो प्रभु, दूर करो मन-विषय-विकार।।

यथेति पंजिकालेखं जलं विंशति राढकम्।
पृषदप्यस्य नाप्तव्यं भूयस्तु पंजिपीडनैः।।१६।।

– जैसे पंजिका में बीस आना जल लिखा हुआ है, किन्तु बार-बार पंजिका को निचोड़ने पर एक बूँद जल भी नहीं निकलता है।

बह्वी धर्मकथा शास्त्रे विशदं लिखिता तथा।
धर्मस्तु साधनैर्लभ्यः पठनैर्न हि केवलम्।।१७।।

– वैसे ही पोथी में बहुत-सी धर्म की बातें लिखी हुई हैं, किन्तु पढ़ने से ही नहीं होता, साधना चाहिए।

(क्रमशः)

कविता

रमते हरि भारत के मन में

श्रीधर

बहुकाल विराज त्रिपाल तले,
रघुराज किला पर आज चले ।
जनता-मृदु-मंगल-गान करे,
सरयू-तट दीप हजार जले।।
रमते-हरि भारत के मन में,
जन के उर में नग में खग में।
सब भूधर कंधर सिन्धु-नदी,
शुचि भारत के कण में कण में।।
रघुनन्दन नन्दित लोक सभी,
अवधेश प्रवेश करें गृह में।
प्रिय राम नहीं लगते जिनको,
वह भारत को न प्रिये मन में
पुनरागम राम किये धरणी,
भव-वारिधि हेतु महा तरणी।
जय राम रमा जयराम सिया
यह गूँज जगी सरणी सरणी।।

सबकी श्रीमाँ सारदा

स्वामी चेतनानन्द, अमेरिका

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज वेदान्त सोसाइटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। विवेक ज्योति के पाठकों के लिये उनके अँगेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद भोपाल के लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया ने किया है।)

राजेन (बाद में स्वामी विद्यानन्द) कोआलपाड़ा आश्रम के पूर्णकालिक रसोईया थे और आश्रम के दूसरे कई प्रकार के काम भी करते थे। वे बहुत सरल, सादगी-पसंद थे तथा माँ के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। एक बार उनका महंत महाराज से ठीक सामंजस्य नहीं हो रहा था, साथ-ही अत्यधिक काम के कारण उनका स्वास्थ्य गिर रहा था और आश्रम में पौष्टिक भोजन भी उपलब्ध नहीं था। जयरामबाटी आकर उन्होंने माँ को अपनी समस्या बताई। उन्होंने वाराणसी जाने की अनुमति माँगी। माँ ने उसकी जगह उन्हें जयरामबाटी में अपने पास रहने को कहा। राजेन सहमत हो गए और ब्रह्मचारी गोपेश के साथ माँ की गृहस्थी का कार्य देखने लगे।

माँ सारदा हमेशा पूजा के समय ठाकुर को एक गिलास मिश्री का शरबत अर्पित करती थीं और फिर उसे प्रसाद के रूप में पी लेती थीं। इसी प्रकार उन्होंने अपना उपवास तोड़कर अन्य प्रसाद साधुओं और भक्तों को बाँट दिया। अब प्रतिदिन पूजा के बाद माँ राजेन को अपने कमरे में बुलाती थीं। माँ मिश्री का शरबत थोड़ा-सा चखकर राजेन को पीने के लिए दे देती थीं। एक दिन माँ ने ब्रह्मचारी गोपेश को व्यक्तिगत रूप से कहा – ''बेटा, आश्रम में आग पर खाना बनाते-बनाते राजेन का सिर बहुत अधिक गर्म हो गया है। खराब स्वास्थ्य के होते हुए भी उसने कठिन परिश्रम किया है। यही नहीं, उस समय कोआलपाड़ा में उसे सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई हो रही थी, वह वाराणसी जाना चाहता था। मैंने उसे अपने साथ रहने को कहा, जिससे उसके मस्तिष्क को विश्राम मिल सके। बाद में जब उसका स्वास्थ्य सुधर जायेगा, तब वह कोआलपाड़ा आश्रम लौट जाएगा और पुनः वहाँ अपना काम करेगा। प्रतिदिन प्रातः उस समय से शरबत प्रसाद को मैं उसको भी देती हूँ, जिससे उसका मस्तिष्क शान्त हो जाये।'' अपने संन्यासी शिष्य के प्रति माँ के स्नेह को देखकर ब्रह्मचारी गोपेश का हृदय भर आया।

कुछ महीने बाद राजेन का स्वास्थ्य सुधर गया और वे कोआलपाड़ा लौट गए। माँ सारदा के देहत्याग के पश्चात् जयरामबाटी में माँ सारदा का मंदिर बनाने के लिए उन्होंने अत्यधिक परिश्रम किया। वे मंदिर के प्रथम देखभाल करने वाले थे, लेकिन उसकी स्थापना के एक वर्ष बाद उन्होंने अपना देहत्याग किया।

जनवरी, १९१७ में किसी समय, मेमनसिंह (अब बंगलादेश में) से माँ सारदा के चार शिष्य उनके दर्शन के लिए जयरामबाटी आए। जैसाकि माँ कुछ समय से अस्वस्थ थीं, उन्होंने कुछ दिन ही रुकने की मंशा व्यक्त की। माँ उनको देखकर बड़ी प्रसन्न थीं। जयरामबाटी में रहते हुए वे कामारपुकुर गए और लौटते समय वे आँधी-तूफान में फँस गए। उन लोगों में जो प्रमुख थे, उन्हें मलेरिया का बुखार आने लगा। माँ बहुत उद्विग्न थीं। अतिथि निवास छोटा था और कई लोग वहाँ रुके हुए थे। साथ ही रोगी के लिए शौचालय की सुविधा नहीं थी। माँ ने बीमार भक्त के लिए विशेष भोजन और कुनैन की दवा की व्यवस्था की। जब तीन दिन के बाद भी बुखार कम नहीं हुआ, स्थिति को देखते हुए भक्तों ने बीमार भक्त को कोआलपाड़ा आश्रम ले जाने का निर्णय लिया, जहाँ पर्याप्त कमरा और पास में एक शासकीय चिकित्सालय भी था। माँ शान्त थीं। स्वामी विद्यानन्द ने किराए पर पालकी किया और दोपहर बाद रोगी और उसके साथियों को कोआलपाड़ा ले गए। माँ ने

'दुर्गा-दुर्गा' जपते हुए उन लोगों को विदा किया। थकी हुई माँ भारी मन से बिस्तर पर लेट गईं। उनका सेवक ब्रह्मचारी गोपेश बरामदे में बैठ गया, जिससे कोई उनके विश्राम में बाधा उपस्थित न करे।

अचानक घने काले मेघों ने आकाश को आच्छादित कर लिया और चारों ओर घना अँधेरा छा गया। बिजली और गड़गड़ाहट के साथ तेज आँधी चलने लगी। माँ सारदा जाग गईं और जोरों से 'मेरे बच्चों का क्या होगा' चिल्लाते हुए कमरे के बाहर आईं? उनका घूँघट गिर गया, बाल बिखरे हुए थे। उन्हें अपने आसपास के जगत का कोई बोध नहीं था। वे बरामदे के किनारे पर आ गईं। ऊपर आकाश की ओर देखते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की – ''हे ठाकुर ! मेरे बच्चों की रक्षा करो। हर प्रकार से मेरे बच्चों की सुरक्षा करो भगवान !'' उनके अश्रुपूरित नेत्रों को देखकर ब्रह्मचारी गोपेश स्तब्ध हो गए। उन्होंने सान्त्वना देते हुए माँ से कहा : ''माँ आप चिन्ता मत करिए, वे लोग इस समय तक देशरा पहुँच गए हैं। स्वामी विद्यानन्द बुद्धिमान हैं। वे तथा तीन अन्य भक्त उसके साथ हैं। साथ ही पालकी लेकर जानेवाले, आज्ञाकारी और विश्वसनीय हैं।'' ब्रह्मचारी गोपेश माँ को लेकर उनके कमरे में गए। माँ जब कमरे के भीतर गईं, ठाकुर के चित्र के सामने खड़े होकर, बार-बार रोने और प्रार्थना करने लगीं – ''हे ठाकुर ! कृपा करके मुझ पर दया कीजिए और मेरे बच्चे की रक्षा कीजिए।'' अपने भक्तों पर माँ का स्नेह देखकर ब्रह्मचारी गोपेश अवाक् और अभिभूत हो गए। धीरे-धीरे बादल कुछ साफ हुआ। अर्द्धरात्रि को वर्षा रुक गई। माँ रातभर बेचैन थीं। सुबह स्वामी विद्यानन्द लौटे और माँ को बताया कि आँधी-तूफान के समय वे लोग देशरा के एक मकान में रुक गए थे। वर्षा जब रुक गई, वे लोग लालटेन लेकर कोआलपाड़ा पहुँच गए। रात में वहाँ उन लोगों ने भोजन किया और वहाँ रात्रि में अच्छी तरह विश्राम किया। बीमार भक्त तथा अन्य लोग कुशलपूर्वक हैं। यह सुनकर माँ सारदा को बहुत अच्छा लगा।

मैमनसिंह के शौरजेन्द्रनाथ एक संभ्रान्त परिवार से सम्बन्धित थे और कूचबिहार राजपरिवार के कर्मचारी थे। वे माँ के शिष्य थे और उनके परिवार के कई सदस्यों ने माँ से दीक्षा ली थी। बचपन से ही वे सुबह उठते ही चाय पीने के अभ्यस्त थे। दीक्षा के बाद उन्होंने माँ सारदा से कहा – ''माँ सुबह उठते ही मुझे चाय पीने की आदत है। चाय पीए बिना सुबह उनके लिए साधना करना सम्भव नहीं होगा। मुझे क्या करना होगा?'' माँ ने मुस्कुराकर कहा – ''बेटा यह कोई समस्या नहीं है। जप और ध्यान करने के पहले तुम चाय या कोई अन्य चीज पी सकते हो।''

जयरामबाटी में माँ सारदा भक्तों को जलपान में फल, मिठाई और मुरमुरा देती थीं, माँ स्वयं हरी मिर्च के साथ मुरमुरा खाती थीं और एक गिलास मिश्री का शरबत पीती थीं। एक बार जब शौरजेन्द्र माँ से मिलने आए थे, माँ ने उन्हें जलपान में मुरमुरा और गुड़ दिया। शौरजेन्द्र ने उनसे कहा, ''माँ आपने मुझे यह क्या दिया है? मैं इस प्रकार की चीजें नहीं खाता।'' माँ ने उससे कहा – ''बेटा, यहाँ इसी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हैं। खा लो। इससे तुम्हें किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। जब मैं कलकत्ता जाऊँगी, तब मैं तुम्हें अच्छी वस्तुएँ खिलाऊँगी।''

कोआलपाड़ा में संन्यासी दस बजे तक खाली पेट मन्दिर में पूजा करते थे। एक दिन माँ ने विद्यानन्द से कहा : ''तुम लोग बिना कुछ खाये पूजा करते हो। यह मन को अशान्त कर देता है। पेट यदि शान्त हो, तो मन शान्त रहता है। अपना जलपान करो और उसके पश्चात् पूजा करो।'' उनका परामर्श बिलकुल व्यावहारिक था।

जयरामबाटी में सामान्यत: लोग नंगे पाँव चलते थे। साथ ही कलकत्ता से आनेवाले माँ सारदा के भक्तगण भी जो इस भूमि को पवित्र मानते थे, नंगे पाँव चलते थे। कभी-कभी गाँव के बच्चे माँ सारदा के आँगन में खेल-खेल में ईंट के टूटे हुए टुकड़ों और मिट्टी के टूटे हुए बर्तनों के टुकड़ों को फैला देते थे। स्वामी सारदेशानन्द ने इस मर्मस्पर्शी कहानी का वर्णन इस प्रकार किया है –

मैं इस छोटी घटना का स्मरण कर रहा हूँ : माँ जयरामबाटी में थीं। उस समय उनकी आयु ६० वर्ष से अधिक थी और स्वास्थ्य ठीक नहीं था। रात बहुत हो चुकी थी, लगभग डेढ़ बजे थे। मेरी नींद खुल गयी और अपने कमरे से मैंने देखा, आँगन में प्रकाश है। उत्सुकतावश मैं बाहर आया और देखा कि लालटेन के प्रकाश की सहायता से कोई कुछ कर रहा है। मैं नीचे गया और देखा कि माँ खुरपी (कुदाली) से खुदाई कर रही हैं और मिट्टी के बर्तन के टूटे हुए टुकड़ों और ईंट के टुकड़ों को बीन करके टोकरी में इकट्ठा कर रही हैं। मैंने हतप्रभ होकर पूछा – ''माँ, आप

क्या कर ही हैं?'' असहज भाव से उन्होंने उत्तर दिया, ''मैं इन टूटे हुये टुकड़ों को इकट्ठा करके इस आँगन को साफ कर रही हूँ।'' ''आप ऐसा क्यों कर रही हैं?'' ''बेटा धीरे से बोलो, ''अन्यथा दूसरे लोगों की नींद टूट जायेगी।'' फिर माँ ने धीरे से कहा ''देखो बेटा, कुछ बच्चे कलकत्ता से आए हैं। वे शहर में रहते हैं और नंगे पैर चलने की उनकी आदत नहीं है। यहाँ लोग नंगे पैर चलते हैं। आज किसी का पैर कट गया था। इसलिए मैं इन टूटे हुए टुकड़ों को साफ कर रही हूँ, जिससे उन्हें चोट नहीं पहुँचेगी। मैं बोला : ''माँ यह काम हमलोग कर सकते हैं। आप ऐसा क्यों कर रही हैं और जाग रही हैं?'' ''हाँ बेटा, मैं जानती हूँ, तुम इसे कर सकते हो। लेकिन तुम लोग गृहस्थी के इतने कार्य करते हो और थक जाते हो, अत: तुम्हें निद्रा की आवश्यकता है। मेरे पास कोई काम नहीं है। इसलिए तुम जब सोने के लिए गये, मैं आँगन साफ करने के लिए आ गई।'' मैंने कहा : ''माँ ठीक है, आप मुझे खुरपी (कुदाली) दे दीजिए, आँगन की सफाई मैं करूँगा। आप अपने कमरे में जाकर सो जाइये। माँ सौम्य स्वर में बोली : ''बेटा, इस कार्य को मैं करूँगी, क्योंकि मैं माँ हूँ। एक माँ अपने बच्चों के लिए कई प्रकार के काम करती है। मैं तुम सब लोगों के लिए बहुत कम करती हूँ। बेटा जाओ और सो जाओ। मैंने लगभग पूरा काम कर लिया है ! केवल थोड़ा बाकी है।'' मैं अधिक कुछ नहीं बोल सका। मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। मैंने सोचा : ''यही कारण है कि आप जगन्माता हैं।'' निद्रा का त्याग करके न केवल वे आँगन को साफ कर रही हैं, माँ अपने बच्चों के मार्ग पर आनेवाली बाधाओं को भी दूर कर रही हैं और ऐसा वे करती रहेंगी।

चाण्डाल और अधम की माता

उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रचलित भारतीय जाति व्यवस्था को समझना, पश्चिम के व्यक्ति अथवा आधुनिक भारतीय के लिए कठिन है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण, उच्च जाति का व्यक्ति उस भोजन को जिसे अन्य तीन वर्ण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से किसी एक या गैर-हिन्दू द्वारा स्पर्श किया गया हो, उसे खा नहीं सकता था या जल को पी नहीं सकता था। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जाति के नियमों को लेकर समाज अत्यन्त कठोर था। जो भी जाति के नियमों को तोड़ता था, उसे जाति से बहिष्कृत माना जाता था और उसे तथा उसके परिवार का बहिष्कार कर दिया जाता था। कुछ धनी एवं प्रतिष्ठित परिवार भी इन कठोर सामाजिक कुरीतियों के शिकार थे। उदाहरण के लिए दक्षिणेश्वर काली मन्दिर की प्रतिष्ठापक रानी रासमणी तथाकथित निम्न जाति से आती थीं और उनसे कहा गया था कि वे माँ काली को पके हुए अन्न का भोग नहीं लगावें। सौभाग्यवश श्रीरामकृष्ण के भाई रामकुमार ने इस समस्या का हल निकाल दिया था। मुसलमानों से उनके निकट सम्बन्धों के कारण उच्च कुलीन ब्राह्मणों द्वारा रवीन्द्रनाथ टैगोर के परिवार को भी हेय की दृष्टि से देखा जाता था।

माँ सारदा ने ठाकुर के उपदेश का अनुसरण किया कि भक्तों की कोई जाति नहीं होती। ईश्वर की संतानों के बीच जातिभेद कैसे हो सकता है? माँ अपने आदर्श से विचलित नहीं हुईं। उनके शिष्य और भक्त सभी जातियों से थे। माँ ने कलकत्ता और साथ ही साथ जयरामबाटी में भी उनकी सेवा की।

एक बार माँ ने, छोटी बुनकर जाति 'युगी' के भक्त को दीक्षा दी थी। वह जयरामबाटी में अन्य भक्तों के साथ खुलकर मिलने में हिचकता था। माँ सारदा ने उसे यह कहते हुए आश्वस्त किया : ''बेटा तुम असहज अनुभव क्यों करते हो कि तुम 'युगी' हो? तुम ठाकुर की मण्डली से हो, तुम उनके परिवार से हो। जब माँ ने उसे दीक्षा दी थी, तब उन्होंने उसकी जाति के बारे में उससे नहीं पूछा था। उन्होंने अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था, इसलिए उन्हें ऐसा लगा कि गाँव में कोई उससे, उसकी सामाजिक स्थिति के बारे में प्रश्न नहीं करेगा, न ही यह उसके लिए आवश्यक था कि वह इस सम्बन्ध में किसी अन्य से चर्चा करे।

एक बार दुर्गापूजा के अवसर पर बहुत सारे भक्त माँ के चरणों पर पुष्प अर्पित कर रहे थे। तेजपुर का एक व्यक्ति बाहर खड़ा हुआ था। वह भीतर आकर माँ के चरणों में पुष्प अर्पित करने से डर रहा था, क्योंकि वह एक 'बागची' था, जो तथाकथति एक छोटी जाति है। लेकिन माँ सारदा ने स्वयं उसे कमरे के भीतर बुलाकर पुष्प अर्पित करने को कहा, जो उसने किया। वह आनन्द से परिपूर्ण होकर अपने गाँव चला गया। ये घटनायें आजकल भले ही सामान्य प्रतीत हों, परन्तु तत्कालीन भारतीय समाज में जाति एक महत्त्वपूर्ण

चर्चा का विषय था।

एक बार सपेरों की एक टोली जयरामबाटी आई और उन लोगों ने सड़कों पर अपनी डुगडुगी बजाना प्रारम्भ किया। जब वे लोग माँ के घर के पास आए, तो उन्होंने सर्पों को देखने की उत्सुकता प्रगट की। उन्होंने अपने आँगन में उन्हें बुलाया और खेल दिखाने को कहा। माँ ने उन्हें पैसा देने की बात कही। सपेरों की डुगडुगी की आवाज सुनकर गाँव के बहुत सारे लोग और बच्चे माँ के घर में एकत्रित हो गए। सपेरों ने साँपों की पिटारी खोल दी और जब उन लोगों ने अपनी बीन बजाई, सर्पों ने अपनी गर्दन उठा ली और लय के साथ अपना सिर हिलाने लगे। जब सपेरों का कार्यक्रम समाप्त हो गया, माँ सारदा ने उन लोगों को दो रुपए और एक कपड़ा दिया, माँ ने उन लोगों को गुड़ और मुरमुरा खिलाया। उनके मुखिया ने माँ की चरणधूलि ली और माँ ने उसके सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया। उनकी एक भाभी ने कहा – ''इतना पर्याप्त था, आपने उन्हें पैसा, कपड़ा और जलपान कराया। आपने उस सपेरे को स्पर्श क्यों किया? दिन-रात वे लोग सर्पों को छूते रहते हैं; उनके हाथें में जहर अवश्य होता होगा। आपको उसे स्पर्श नहीं करना था।''

माँ सारदा ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया – ''मैं क्या कर सकती हूँ? उस व्यक्ति ने मेरे पैरों को स्पर्श करके मुझे प्रणाम किया, मैं उसको कैसे मना करती। यदि कोई व्यक्ति मुझे प्रणाम करता है, तो क्या मैं उसके सिर को स्पर्श करके उसे आशीर्वाद नहीं दूँगी?''

यह अगस्त १९१७ की घटना है। माँ सारदा राजेन्द्र वन्द्योपाध्याय की विधवा को देखने गईं। उसका एक छोटा बच्चा था और कोई अन्य उनको देखनेवाला नहीं था। उसके कान में एक फोड़ा हो गया था और वह संक्रमित हो गया था। घाव में कीड़े हो गए थे और उससे दुर्गंध आ रही थी, जिससे कोई उसके पास नहीं जाता था। माँ ने नीम की पत्ती से एक घोल तैयार किया तथा एक ब्रह्मचारी की सहायता से एक पिचकारी से उसके घाव को साफ किया। उसके बाद माँ ने बरदा से कहा – ''तुम इस असहाय रोगी को, इसी समय कोआलपाड़ा आश्रम ले जाओ और उनकी सहायता करो। यह बहुत अच्छा होगा यदि तुम इस असहाय विधवा को, ले जाओ और उसकी सेवा करो। केदार (स्वामी केशवानन्द) से परामर्श कर लो। इस स्त्री की देखरेख करनेवाला कोई नहीं है। दुर्गन्ध के कारण कोई उसके पास नहीं जाता था। जब मैंने देखा, उसका छोटा लड़का किस प्रकार कष्ट भोग रहा है, मैं दुखी हो गई।''

बरदा तत्काल कोआलपाड़ा के लिए रवाना हो गए और स्वामी केशवानन्द को सब कुछ बता दिया। उन्होंने उस विधवा को वहाँ ले जाने के लिए अनुमति प्रदान कर दी। बरदा पालकी की व्यवस्था नहीं कर पाए, इसलिए उन्होंने एक बैलगाड़ी किराए पर लेकर सिरोमनीपुर और सीहर होते हुए जयरामबाटी पहुँचे। माँ सारदा उन लोगों को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और उन्हें मुरमुरा और मिठाई जलपान में दिया। फिर माँ ने कहा कि उस स्त्री को शीघ्र लेकर जाओ, अन्यथा कोआलपाड़ा पहुँचने में विलम्ब होगा। माँ सारदा ने रोगी महिला को थोड़ा गरम दूध पिलाया और सान्त्वना दिया। साधुओं ने लकड़ी का एक पटिया लिया और उसका उपयोग पालकी जैसे करते हुए मरीज को बैलगाड़ी में बिठा दिया। सात-आठ मील चलकर वे लोग सन्ध्या में कोआलपाड़ा पहुँचे। उस महिला के दोनों कानों से पीप और खून निकल रहा था और भीषण दुर्गंध आ रही थी।

डाक्टर ने चिकित्सा की और संन्यासियों ने दिन-रात उसकी सेवा की, पर दुर्भाग्यवश कुछ दिनों बाद उस स्त्री की मृत्यु हो गई। साधुओं ने उसका अन्तिम संस्कार किया और जयरामबाटी जाकर माँ सारदा को यह सूचना दी। उन्होंने कहा – ''बेटा, तुम सब लोगों ने उसके पुत्र के समान उसकी सेवा की है। यदि वह यहाँ रहती, तो वह बिना देखरेख के मर जाती, उसे कोई पानी भी नहीं देता।'' **(क्रमशः)**

युवा मन पर भोजन का प्रभाव

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

प्रिय युवको ! आपको यह विदित ही है कि भोजन के अभाव में जीवन क्षीण और मन विभ्रमित हो जाता है। भोजन के दो भिन्न महत्त्व हैं – यह हमें बल प्रदान करता है और सहनशील बनाता है। बल और सहनशीलता दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। सहनशीलता रक्त की अवस्था पर निर्भर करती है, जबकि बल मांसपेशियों के स्वरूप पर। कुछ भोजन, जैसे मांस आदि, मांसपेशियों का निर्माण करते हैं। शाकाहारी पदार्थ थकान उत्पन्न करने वाले अम्ल को रक्त से दूर करते हैं। शरीर में अम्ल की वृद्धि होने के कारण थकान होती है। मांसाहारी भोजन के सेवन से प्राय: ऐसा घटित होता है। सामान्यत: हम जो भोजन करते हैं वह धैर्यशक्ति प्रदान करने के लिए उचित है। शक्ति और धैर्य; दोनों मनुष्य में सन्तुलित मात्रा में होने चाहिए। अत: जब शाक-सब्जी के साथ, भोजन में दूध अथवा उससे बने घी, मक्खन आदि पदार्थों की प्रचुरता होती है, हमारा भोजन तभी पर्याप्त पौष्टिक माना जाता है।

युवको! भोजन द्वारा आश्चर्यजनक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है। हम हर किसी के यहाँ और हर किसी के साथ भोजन नहीं करते। जिनके साथ हम भोजन करते हैं, उनके साथ हम एक प्रकार की आन्तरिकता का अनुभव करते हैं। यदि ऐसी बात है, तो हर किसी के साथ बिना विचार-विमर्श भोजन करना हमारे लिए अत्यन्त अवांछनीय है।

एक छोटे-से आश्रम में एक योगी निवास करते थे। वे प्रतिदिन भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करते थे। इस प्रकार वे शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस राज्य का राजा योगी का बहुत आदर करता था। एक दिन राजा ने तपस्वी योगी को भिक्षा के लिए अपने महल में आमंत्रित किया। योगी ने कहा, 'मैं केवल भिक्षा से प्राप्त भोजन ही ग्रहण करता हूँ। मुझे नहीं पता कि यदि मैं आपके महल में कुछ भी खाऊँगा, तो मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसलिए मैं आपका निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता हूँ।'

यद्यपि राजा ने योगी से बारम्बार अनुरोध किया और अन्तत: योगी ने आमंत्रण स्वीकार किया। भोजन के बाद जब योगी स्नानघर में हाथ धो रहे थे, तभी उनकी दृष्टि एक मोतियों से बने हार पर पड़ी। यह देखते हुए कि कोई उन्हें देख नहीं रहा है, योगी ने हार को चुराकर अपने कमण्डलु में रख लिया। फिर वे मुख्य कक्ष में गये, राजा को आशीर्वाद दिया और अपने आश्रम में लौट आये। कुछ समय बाद ही वे इस बात पर विचार करने लगे कि मैंने यह क्या किया?

इस बीच, रानी ने राजा से स्नानघर में छोड़े गए हार के खो जाने की शिकायत की। राजा ने स्थिति का विश्लेषण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नौकरों में से किसी ने इसे चुराया होगा। उन्होंने नौकरों से सत्य उगलवाने के लिए शारीरिक क्रूरता, दुर्व्यवहार और मनोवैज्ञानिक दबाव (थर्ड डिग्री) जैसे उपाय अपनाए। परन्तु नौकर स्वयं को निर्दोष बताते रहे। जब उनमें से एक ने सुझाव दिया कि योगी चोर हो सकता है, तो राजा क्रोधित हो गया।

इधर आश्रम में, योगी पूरी तरह से बीमार थे। 'आज मैंने कितना बुरा कर्म किया है! किसके लिए मैंने हार चुराया?' यदि मैं भिक्षा के लिए इसे पहनकर जाऊँ, तो निश्चित रूप से कोई भी मुझे भिक्षा नहीं देगा। यदि मैंने इसे यहीं छोड़ दिया, तो कोई इसे चुरा सकता है। मैं चौर्योन्मादी (क्लेप्टोमैनियाक नामक चोरी करने की बीमारी से पीड़ित) क्यों बन गया? मैंने कई हार देखे हैं, परन्तु कभी भी उनकी लालसा से प्रभावित नहीं हुआ। आज जो लालसा उत्पन्न हुई है, उसका तात्पर्य यह है कि मेरा मन अशुद्ध हो गया

है। इसका कारण क्या हो सकता है? योगी ने विचार किया और यह ज्ञात हुआ कि उस दिन उन्होंने जो भोजन ग्रहण किया था, वही इसका कारण रहा होगा। उन्हें वमन हुआ और फिर वे राजा के पास गये। महल में शोरगुल देखकर योगी ने राजा से इसका कारण पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि नौकरों में से किसी ने भी खोए हुए हार को चुराने की बात स्वीकार नहीं की है। योगी ने कहा, 'ये निर्दोष हैं, कैसे अपराध स्वीकार करेंगे?' 'हार मेरे पास है, इसे ले लो', पश्चात्ताप करते हुए तपस्वी ने कहा, 'मैं चोर हूँ, तुम्हारा यह हार वापस लौटाने के लिए आाया हूँ।'

आश्चर्यचकित होकर राजा ने योगी से पूछा, 'आप एक महान योगी हैं। क्या आपके लिए हार चुराना उचित है? इसके अलावा आप इसे वापस क्यों ले आए? मैं इस बात से पूरी तरह से भ्रमित हूँ। कृपया बताइये।' योगी ने उत्तर दिया, 'पहले मैंने आपके महल में भिक्षा लेने के निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि अन्ततः मैंने आपके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इतने सारे लोगों को अनावश्यक दण्ड भोगना पड़ा और मेरा भी अपयश हुआ। हे राजन् ! आपने अपने भण्डार में इतनी अधिक मात्रा में चावल संग्रहित किया है। मुझे शंका है कि क्या आपने इसे उचित युक्ति से एकत्र किया है।' राजा ने सत्यता से उत्तर दिया, 'मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि मैंने अनुचित युक्ति से इतना अत्यधिक चावल इकट्ठा किया है।' योगी ने आह भरते हुए कहा, 'मैंने यह चावल केवल एक दिन खाया और वह मेरे मन को अशुद्ध करने के लिए पर्याप्त था।' 'ऐसी स्थिति होने पर, मैं आप सभी पर, जो इसे प्रतिदिन ग्रहण करते हैं, इसके प्रभाव के बारे में सोचकर भी काँप उठता हूँ। इसलिए कृपया मुझे इसके बाद भोजन के लिए आमंत्रित न करें। मैं अपना भोजन भिक्षा माँगकर प्राप्त करूँगा, जैसा कि अब तक करता आया हूँ।' राजा ने पूछा – 'क्या माँगा हुआ भोजन भी अपवित्र नहीं हो सकता?' योगी ने स्पष्ट किया, 'भोजन अशुद्ध हो सकता है, किन्तु ऐसा तभी तक है, जब तक वह मेरे भिक्षा पात्र में न डाला जाए। शास्त्रों का यही प्रमाण है।'

युवको ! यह कहानी सन्देश देती है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भोजन हमारे नैतिक स्वभाव के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जो हमारे शरीर को पुष्ट करता है, उसका हमारे मन पर भी प्रबल प्रभाव होगा। हम जैसा भोजन करेंगे, मन उससे प्रभावित होगा।

अतः भोजन हमारे मन को प्रभावित करता है। खाने योग्य पदार्थों को सात्त्विक, राजसिक और तामसिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

सात्त्विक भोजन – नैतिक जीवन का पालन करनेवालों के लिए उत्तम होता है। क्योंकि यह आहार शरीर के अंगों को शीतल, शान्त और सन्तुलित बनाये रखता है और वासनाओं को उत्तेजित नहीं करता तथा अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करता है; हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फल, अंकुरित अनाज, दही सात्त्विक उत्पाद का एक उदाहरण है।

राजसिक भोजन – यह भोजन इच्छा और क्रोध को उत्तेजित करता है; प्याज, मिर्च आदि तीखे एवं उत्तेजक पदार्थ तथा कच्चे, खट्टे फल राजसिक भोजन के उदाहरण हैं।

तामसिक भोजन – तमोगुणी भोजन से आलस्य और नींद आदि आती है। सड़ा हुआ खाद्य और गन्दगी तमोगुणी भोजन के उदाहरण हैं। रसोइये की मानसिकता और बालों के कतरे जैसे अपवित्र कारकों की उपस्थिति भी भोजन की शुद्धता पर प्रभाव डालती है।

युवाओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे केवल उचित रूप से तैयार किया गया, सात्त्विक भोजन ही खाएँ। भोजन से प्राप्त शक्ति द्वारा हमारे प्राण तथा मानसिक जीवन भी प्रमुख रूप से सम्पोषित होते हैं। इसलिए भोजन का हमारे प्राण और मन; दोनों से सीधा सम्बन्ध है। ○○○

हमारी यह देह संसार-सागर को पार करने की नौका के समान है। यह ध्यान रखो कि इसमें कहीं छेद न हो जाये। अत्यधिक भोजन कभी न करो। पुष्टिकारक हल्का भोजन करो। सभी प्रकार के व्यसनों से दूर रहो। मस्तिष्क को ठण्डा और सबल रखने के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य आवश्यक है। जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, उनका मस्तिष्क बड़ी आसानी से गर्म हो जाता है। ब्रह्मचर्य के बिना मस्तिष्क में दीर्घकाल तक ध्यान को सहन करने की शक्ति नहीं रहती।

– स्वामी यतीश्वानन्द जी महाराज

(ध्यान और आध्यात्मिक जीवन, पृ.१९४)

आनन्द-यात्रा

स्वामी त्रिपुरहरानन्द

इस संसार का प्रत्येक प्राणी सुख पाने के लिए ही दिन-रात संघर्ष कर रहा है। सभी प्राणियों की प्रत्येक चेष्टा का कारण यही है। इसीलिए उपनिषद कहती है कि '**यदा वै सुखं लभते - अथ करोति**[१] – सुख के लिए ही प्रत्येक जीव प्रयास करता है। अगर हम सुख की तारतम्यता को छोड़ दें, तो हर कोई इसी के लिए निरन्तर प्रयासरत है। इस संसार में प्रत्येक कार्य सुख प्राप्ति की आशा से ही किया जाता है। वास्तव में जीव इस पृथ्वी पर तभी तक जीवित रहते हैं, जब तक उन्हें यहाँ कुछ न कुछ सुख मिलता रहता है। इसलिए उपनिषद तो यहाँ तक उदघोष करती है कि – **को हि एवं अन्यात् कः प्राण्यात्**[२] – उसके (सुख के) बिना यहाँ एक श्वास भी नहीं ले सकता है?' अर्थात् हम तभी तक इस संसार में जीवित रहते हैं, जब तक हमें यहाँ कुछ मात्रा में सुख मिल रहा है। आम आदमी की भाषा में इसको इस प्रकार कहा जा सकता है। जब हमारी इच्छाएँ पूरी होती हैं, तो एक प्रकार का सुख अनुभव होता है, जिसे हम आनन्द, खुशी, प्रसन्नता, उल्लास, आह्लाद, हर्ष आदि शब्दों के द्वारा व्यक्त करते हैं। इस संसार में हम जीवन भर सुख की लालसा में इसके पीछे भागते रहते हैं, किन्तु यह जानने का प्रयास नहीं करते कि यह सुख कहाँ से आ रहा है, स्रोत कहाँ है? इसका विज्ञान क्या है? और यह कैसे आ रहा है? सुख यदि वस्तुओं में होता, तो सभी को उनसे हमेशा समान मात्रा में सुख मिलना चाहिए था। लेकिन हम सभी जानते हैं कि वस्तुतः ऐसा नहीं होता है।

आनन्द के प्रकार

स्वामी विद्यारण्य[३] के अनुसार इस सुख या आनन्द को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है, जैसा चित्र १ में दिखाया गया है ! जिसमें पहला है

१. विषयानन्द – यह सांसारिक विषयों से प्राप्त सुख है, जो पाँच रूपों में ग्रहण किये जाते हैं – रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श। यह वह सुख है, जो हमें अभीष्ट बाह्य वस्तु प्राप्त होने पर मन के अन्दर अनुभव होता है।[४]

इसको प्राप्त करने के लिये युवा, स्वस्थ, बलशाली शरीर और सभी भोग्य वस्तुओं का उपलब्ध होना आवश्यक है।[५] राजा भर्तृहरि कहते हैं कि संसार की सभी वस्तुएँ मिलकर भी एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं और एक बार मान भी लें कि यह सब हो जाये, तो भी युवावस्था स्थायी नहीं है, जो कि जागतिक-सुखों के लिए सबसे उपयुक्त समय है।

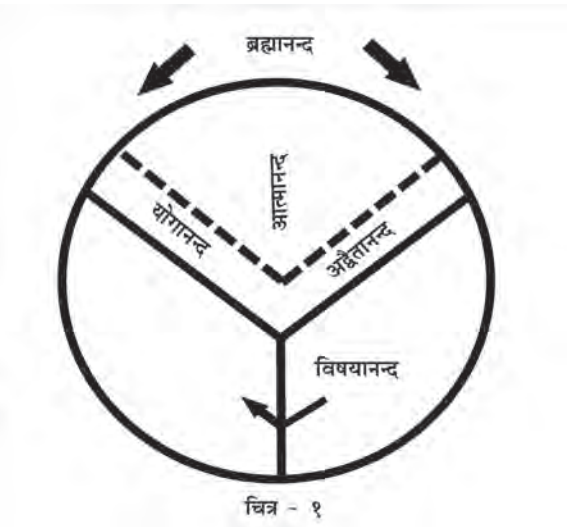

चित्र - १

भोगों में लिप्त रहने पर उपनिषद कहती है – **सर्वेन्द्रियाणाम् जरयन्ति तेजः**[६] ये (भोग) शरीरसहित इन्द्रियों के तेज और शक्ति को क्षीण कर देते हैं। अंगों की शक्ति और शरीर की जीवन शक्ति को छीन लेते हैं। इस सुख की पराकाष्ठा एक चक्रवर्ती राजा को प्राप्त है, जिसके पास सारी सुख-सामग्री उपलब्ध है।''[७]

२. विद्यानन्द – शास्त्रों में मनुष्य जन्म को सबसे उत्तम माना गया है, क्योंकि इसमें सुखानुभूति पशुओं की तुलना में व्यापक और विलक्षण है। विषयानन्द पशु और मनुष्य के लिए समान है, परन्तु विद्यानन्द और ब्रह्मानन्द को केवल मनुष्य द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है! भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – विषय-सुख में किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं है, परन्तु विद्यानन्द/ब्रह्मानन्द निरन्तर अभ्यास करने पर ही फल देते हैं ![८] इसी को पुष्ट करते हुए स्वामी

विद्यारण्य पहले को **स्वभावसिद्धाया... आसुरी सम्पद** और बाकी दोनों को **पुरुषप्रयत्नसाध्याया... दैवीसम्पद** कहते हैं[९] अर्थात् प्रथम राक्षसिक (अर्थात् असुरत्व की ओर ले जानेवाली) और स्वाभाविक है, बल्कि शेष दोनों – दैवी सम्पद हैं (अर्थात् देवत्व की ओर ले जाने वाली) व पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त की जा सकती हैं। या कह सकते हैं कि पहला प्रारब्ध के अधीन है और दूसरा मुख्य रूप से पुरुषार्थ के अधीन है। यह अभ्यास शुरू में विष की तरह कष्टकारक होता है, परन्तु अन्त में फलकाल में अमृत की तरह मीठा होता है। इस सुख की आंशिक अनुभूति होने पर ही विषय-सुख तुच्छ और हेय प्रतीत होते हैं ! सामान्य लोग जो कि भोगों में लिप्त हैं, इस सुख को नहीं समझ सकते! इसलिए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'अनेक लोग विषय-भोग में सुख पाने के कारण विषय-सुख का अन्वेषण करते हैं, किन्तु ऐसे अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, जो उच्चतर आनन्द का अन्वेषण करते हों। कुत्ता खाने-पीने से ही सुखी हो जाता है। वैज्ञानिक कुछ तारों की स्थिति जानने के लिये ही विषय-सुख को तिलांजलि देकर, शायद किसी पर्वत के शिखर पर वास करता है। वह जिस अपूर्व सुख का आस्वाद पाता है, कुत्ता उसे नहीं समझ सकता। कुत्ता उसे देखकर शायद हँसे और उसे पागल कहे और हो सकता है, बेचारे वैज्ञानिक के पास विवाह करने भर को भी पैसे न रहे हों, हो सकता है, वह बड़ा सादा जीवन बिताता हो। हो सकता है कि कुत्ता उस पर हँसता हो। किन्तु वैज्ञानिक कहेगा, भाई कुत्ते! तुम्हारा सुख केवल इन्द्रियों में है, तुम उसके अतिरिक्त और कोई भी सुख नहीं जानते, पर मेरे लिए तो यही सबसे बढ़कर सुख है और यदि तुम्हें अपने मनोनुकूल सुखान्वेषण का अधिकार है, तो मुझे भी है।' हम यही भूल करते हैं कि हम समस्त जगत् को अपने ही अनुसार चलाना चाहते हैं। हम अपने ही मन को सारे जगत् का मापदण्ड बनाना चाहते हैं। तुम्हारी दृष्टि में उन पुराने इन्द्रिय-विषयों में ही सर्वसुख है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुझे भी उन्हीं में सुख मिलेगा और जब तुम अपने मत पर अड़ने लगते हो, मेरा तुमसे मतभेद हो जाता है। लौकिक उपयोगितावादी के साथ धार्मिक व्यक्ति का यही प्रभेद है।''[१०] फिर इस विद्या-सुख का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, एक वैज्ञानिक से लेकर संन्यासी तक जो केवल ईश्वर-प्राप्ति के उद्देश्य से शास्त्रों का अध्ययन कर रहा है ! इस सुख की पराकाष्ठा एक महाविप्र में है, अर्थात् एक यथार्थ साधु जिसे शास्त्रों का ज्ञान है व उसके अनुसार ही उसका जीवन है।[११]

३. ब्रह्मानन्द – जब व्यक्ति केवल शास्त्रों के बौद्धिक अध्ययन से ही अपने को कृतकृत्य नहीं मानता, बल्कि इनको अपने जीवन में अनुभव करता है। जब उसे ब्रह्मज्ञान हो जाता है, तो ऐसे व्यक्ति को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह सर्वोत्कृष्ट होता है। यह समय या स्थान के साथ कम नहीं पड़ता, एक रस रहता है ! इसको साधक तीन स्तरों पर चलकर प्राप्त करता है, ये हैं जैसा (चित्र १) में दर्शाया गया है –

(क) योगानन्द – साधना के मार्ग पर अग्रसर होते हुए जब उसकी सम्पूर्ण सांसारिक इच्छायें समाप्त हो जाती हैं, तो जो सुख उसे अनुभव में आता है, उसे योगानन्द कहते हैं। इसलिए उपनिषदों में भी योग की परिभाषा है – **तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्**[१२] – अर्थात् इन्द्रियों को स्थिर करने को ही योग कहा जाता है। अर्थात् जिस काल या जिस अवस्था में इन्द्रियों की विषयों की ओर जो स्वाभाविक प्रवृत्ति, तृष्णा है रुक जाती है, यह योग का उद्देश्य है। यहाँ पर एक शंका हो सकती है, बिना विषय के सुख कैसे मिलेगा? तो महर्षि व्यास कहते हैं – इस अवस्था में प्राप्त सुख का सोलहवाँ अंश भी इस पूरी पृथ्वी या स्वर्ग के सर्वोत्तम भोगों से प्राप्त नहीं किया जा सकता।[१३] परन्तु जब तक हमें इसका अनुभव नहीं होता, शास्त्र पर श्रद्धा रखते हुए ही आगे बढ़ना होगा!

(ख) आत्मानन्द – जब पूर्वोक्त योगाभ्यास से इन्द्रियाँ नियन्त्रित और शान्त हो जाती हैं, तभी हमें अपने स्वरूप का ज्ञान होता है, जो कि व्यवहार में 'मैं' द्वारा इंगित होता है और जिसे प्रत्यगात्मा कहते हैं, जो **'अवस्थात्रय साक्षी सन्पंचकोश-विलक्षण:**[१४] तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) का साक्षी है – और जो पाँचों कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) से अलग है।

(ग) अद्वैतानन्द – इस अवस्था में साधक को सर्वत्र एक ही तत्त्व की अनुभूति होती है और वह साधक से ज्ञानी हो जाता है! ऊपर कहे गए योगानन्द और आत्मानन्द देश और काल से प्रतिबद्ध हैं, आत्मानन्द की अनुभूति केवल समाधि में हो सकती है और योगी के मन में भी परवर्ती काल में इच्छाएँ जाग्रत हो सकती हैं और उसके योगानन्द

को अभिभूत कर सकती हैं। किन्तु यह अद्वैतानन्द ही हमेशा एकरस रहता है, इसीलिए उपनिषद कहती है – **'यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति'** – जो भूमा (अनन्त/महान) है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है।'[१५] इस वास्तविक सुख के मापदंड की चार कसौटियाँ हैं –

१. दुखाभाव – दुख का अत्यन्त अभाव

२. कामाप्तिः – सभी इच्छाओं की पूर्ति

३. कृतकृत्य – कुछ और कर्तव्य शेष नहीं और

४. प्राप्तप्राप्य – जो प्राप्त करना था, सो प्राप्त हो गया।[१६]

उपनिषदों का उद्घोष है कि – **तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः**[१७] ऐसे व्यक्ति के लिये जो सदा, सर्वत्र परमात्मा को ही देखता है, उसमें शोक, मोहादि विकार नहीं रह सकते, जिनसे दु:ख उत्पन्न होता है।

राजसिक और तामसिक सुख – ऊपर कहे हुए तीन सुखों से अतिरिक्त, श्रीमद्भगवद्-गीता में भगवान कृष्ण एक और कहते हैं तामसिक नींद का सुख, प्रमाद और आलस्य।[१८] किन्तु अत्यन्त हेय होने से पंचदशीकार ने उसको नहीं लिया! तामसिक व्यक्ति अधिकतर सोता है या निष्क्रिय रहता है। इस प्रकार का व्यक्ति कभी कभी सही निर्णय नहीं ले सकता, हमेशा संदेह और अनिश्चितता के घेरे में रहता है और परिणाम होता है – ***वृथा आयु क्षपण***, अन्त में बिना किसी लक्ष्य को प्राप्त किये, मृत्यु को प्राप्त होता है, जीवन को नष्ट कर लेता है। तामसिक व्यक्ति लक्ष्यहीन होता है, जबकि राजसिक व्यक्तियों के जीवन में बहुत सारे लक्ष्य होते हैं, जो समय-समय पर बदलते भी रहते हैं, लेकिन सात्त्विक व्यक्ति की तरह उनका कोई एक निश्चित लक्ष्य नहीं होता है, इसलिए इनकी शक्ति कई दिशाओं में बिखर जाती है और केन्द्रित नहीं हो पाती। यह सुख इन्द्रियों के विषयों के सम्पर्क में आने से होता है और अत्यधिक कर्म में प्रवृत्त करता है। अत: यह सुख भोगकाल में अमृत की तरह लगता है, परन्तु परिणाम में या अन्त में विष की तरह कष्ट का कारण होता है।[१९] क्योंकि अनियन्त्रित, दिशाहीन कार्य महत्वाकांक्षा, वासना, क्रोध, लोभ, अभिमान, ईर्ष्या को जन्म देता है। अन्ततोगत्वा इससे शक्ति, बल, विवेक, बुद्धि और धन का ह्रास होता है।

आनन्द यात्रा

विद्यानन्द में रजमिश्रित सत्त्व है और इस सत्त्व का अंश योगानन्द से अद्वैतानन्द तक लगातार बढ़ता जाता है और अद्वैतानन्द में मात्र शुद्ध सत्त्व ही रहता है, रज नहीं रहता। ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में यह सत्त्व-गुण एक सच्चे मित्र की तरह है, जिससे उसमें दैवी सम्पद – विनम्रता, सरलता, नि:स्वार्थता, संतोष, श्रद्धा, धैर्य, विश्वास आदि प्रकट होने लगते हैं और अन्त में वह पूर्ण पवित्रता के साम्राज्य में प्रवेश कर जाता है। यह ईश्वर-प्राप्ति की यात्रा यदि सही दिशा में की जाये, तो वास्तव में एक आनन्द-यात्रा है, जहाँ हम निरन्तर निम्न सुख से उच्च (घनीभूत, व्यापक और निरतिशय) की ओर स्वत: जाते हैं।

हम सभी के अन्दर हमेशा उच्चतर सुख (जहाँ हैं, वहाँ से उत्कृष्ट सुख) को पाने की इच्छा सदैव रहती ही है, इसलिए शंकाराचार्य कहते हैं, '**सर्वो हि उपरि-उपरि एव बुभूषति लोक**'[२०], अर्थात् प्रत्येक प्राणी जिस सुख में लिप्त है, वह उससे उच्चतर सुख के लिए सदा प्रयत्नशील है। अत्यधिक विषयी मनुष्यों में भी यह इच्छा है, परन्तु विषयों से मोहग्रस्त रहने के कारण यह तत्काल अभिव्यक्त नहीं हो पाती, दबी रहती है। लेकिन कालक्रम में यह स्वत: अभिव्यक्त होगी और उसे निम्न सुख से उच्चतर सुख की ओर स्वत: ले जाएगी।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि कोई भी विषय-सुख एक सीमा से अधिक भोगने पर वितृष्णा में परिणत हो जाता है या उसके लिए घृणा भी उत्पन्न करता है। इसलिए शीघ्र या देरी से सभी के अन्दर विषयों से वैराग्य उत्पन्न होगा और यह वैराग्य सत्य, अहिंसा, परोपकार, दानादि धार्मिक कृत्यों के रूप में अभिव्यक्त होता है। लेकिन जब वह केवल धार्मिक जीवन से ही सन्तुष्ट नहीं होता, तब अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति आध्यात्मिकता में पाता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – इधर का आनन्द मिलने पर फिर संसार नहीं सुहाता। ईश्वर का आनन्द मिल गया, तो संसार अलोना जान पड़ता है।... जो लोग संसार में धर्म की रट लगाते हैं, वे लोग एक बार अगर ईश्वर का आनन्द पा जाएँ, तो उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। कामों के लिए जो दृढ़ता होती है, वह भी घट जाती है। क्रमश: आनन्द जितना बढ़ता जाता है, उतना ही वे काम करने से थक जाते हैं, केवल उस

आनन्द की ही खोज में रहते हैं। कहाँ ईश्वरानन्द और कहाँ विषयानन्द और रमणानन्द ! एक बार ईश्वर के आनन्द का स्वाद पा जाने पर फिर मनुष्य उसी आनन्द की खोज के लिए लगा रहता है, फिर चाहे संसार रहे या जाये।[२१] यहाँ ठाकुर दो बातों की ओर संकेत करते हैं, पहला – ईश्वरीय रस चखे बिना संसार का रस छोड़ना असम्भव है, क्योंकि हमें सांसारिक भोगों का प्रचुर अभ्यास है और दिव्य-सुख का नहीं। इसलिए जब दोनों का तुलनात्मक संघर्ष होता है, तो पहला पलड़ा ही भारी पड़ता है! जब राम ने इस संघर्ष से त्रस्त होकर महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया, तो उन्होंने कहा – **प्रागभ्यास-वशात् याता यदा ते वासनोदयम् ! तदा-अभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन।।**[२२] अर्थात् आपका प्रश्न ही उत्तर की ओर संकेत रहा है, जब पुराने भोग-अभ्यास के कारण मन निम्नगामी हो रहा है, तो शुभ-वासना के अभ्यास से निश्चय ही यह उर्ध्वगामी क्यों नहीं होगा? ईश्वर की भक्ति, योगाभ्यासादि ही शुभ वासना या अमल-वासना है, जहाँ किसी प्रकार का मल यानि गंदगी नहीं है, पूर्ण स्वच्छ है। जब इस शुभ-वासना से अशुभ-वासना स्वच्छ हो जाएगी, तब दोनों को छोड़कर स्वरूप में पहुँचना होगा। दूसरा – धार्मिक दान-परोपकारादि शुभ वासना है, ये निश्चय ही अच्छे हैं, परन्तु एक स्थिति के बाद इन्हें भी छोड़ना पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द इस सन्दर्भ में कहते हैं – ''जन्म से मृत्यु तक की इस यात्रा को संस्कृत में 'संसार' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है, जन्ममरण का चक्र। इस चक्र से गुजरती हुई सारी सृष्टि ही कभी न कभी मोक्ष को प्राप्त करेगी। अब प्रश्न हो सकता है कि जब सबको मोक्ष-प्राप्ति होगी ही, तब प्रयास की क्या आवश्यकता है? जब सब लोग मुक्त हो ही जायेंगे, तो क्यों न हम चुपचाप बैठकर इसकी प्रतीक्षा करें? इतना तो सत्य अवश्य है कि कभी न कभी जीव मुक्त हो जाएँगे, कोई नहीं रह जायेगा। किसी का भी विनाश नहीं होगा, सबका उद्धार हो जायेगा। अगर ऐसा हो, तो प्रयत्न करने से क्या लाभ? पहली बात तो यह है कि प्रयत्न करने से ही हम मौलिक केन्द्र पर पहुँच पायेंगे, दूसरी बात यह है कि हम स्वयं नहीं जानते कि हम प्रयत्न क्यों करते हैं। हमें प्रयत्न करते रहना है, बस। 'सहस्त्रों लोगों में कुछ ही लोग यह जानते हैं कि वे मुक्त हो जाएँगे।' संसार के असंख्य लोग अपने भौतिक कार्य-कलापों से ही सन्तुष्ट हैं। पर कुछ ऐसे लोग भी अवश्य मिलेंगे, जो जाग्रत हैं और जो संसार चक्र से ऊब गये हैं। वे अपनी मौलिक साम्यावस्था में पहुँचना चाहते हैं। ऐसे विशिष्ट लोग जान-बूझकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, जब कि आम लोग अनजाने ही उसमें रत रहते हैं।[२३]

ब्रह्मानन्द के रस का थोड़ा-सा भी आस्वादन किये बिना विषय-सुख को पूर्णरूपेण छोड़ना असम्भव है, चाहे हम कितना ही प्रयास क्यों न करें। इसीलिए श्रीरामकृष्ण जगन्माता से प्रार्थना करते हैं कि इनको (निकटवर्ती भक्तों को देखकर) कुछ अन्दर आनन्द दो, नहीं तो ये विषयों को कैसे छोड़ेंगे। एक दिन भावास्था में श्रीरामकृष्ण देव की यह इच्छा हुई कि भक्तों को भी भाव-समाधि हो तथा उन्होंने जगदम्बा से भी इस बात की प्रार्थना की। इसके बाद ही भक्तों में से किसी-किसी को भाव-समाधि होने लगी। उस भावावस्था में उनके लिए बाह्य-जगत तथा देह आदि का बोध कुछ अंशों में घटकर उनके भीतर एक विशेष प्रकार के भाव-प्रवाह का उद्‌भव होता था।[२४]

उपसंहार

इस संसार में हमें जो कुछ भी सुख का अनुभव होता है, वह केवल ब्रह्म से ही आता है, यह सैद्धान्तिक तथ्य है, जिसे चित्र-१ में दिखाया गया है। यही सभी उपनिषदों और पंचदशी के लेखक स्वामी विद्यारण्य का स्पष्ट कथन है, क्योंकि सुख का अन्य कोई स्रोत ही नहीं है।

इसे केवल एक ज्ञानी ही अनुभव कर सकता है, जबकि एक साधक, पहले विषय-सुख से अपने को विद्या-सुख की ओर अग्रसर होते हुए ब्रह्मानन्द तक चरणबद्ध रूप से निम्न-सुख से उच्चतर की ओर अग्रसर होता है, यह व्यावहारिक

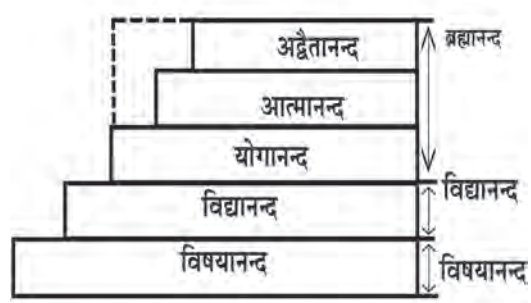

चित्र - २

पक्ष है, जैसा कि चित्र (२) में दिखाया गया है। उपनिषद

भी कहती है – ''**पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत... बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्य-अथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मण**''[२५] – सबसे पहले विद्या अर्थात् शास्त्राध्यायन द्वारा पाण्डित्य प्राप्त करके, योगाभ्यास द्वारा बल प्राप्त कर तदनन्तर आत्माभ्यास द्वारा विजातीय प्रत्यय हटाकर मौन भाव में ही स्वरूप स्थिति प्राप्त होती है, जिसे यहाँ ब्राह्मण कहा है। इन सभी स्तरों पर अनुभव किया गया सुख, ब्रह्म के आनन्द का प्रतिबिंब मात्र है, लेकिन इसका केवल एक अंश ही विषय-सुख और विद्या-सुख में अनुभव किया जाता है। हालाँकि, जब वृत्तियाँ अन्तर्मुख होती हैं, तो ब्रह्म का पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। इस अवस्था में, उच्चतम आनन्द (भूमा) का अनुभव होता है। बृहदारण्यक उपनिषद में, ऋषि याज्ञवल्क्य राजा जनक को उपदेश देते हैं – '**एतस्य-एव-आनन्दस्य-अन्यानि भूतानि मात्रा-मुपजीवन्ति**'[२६] यह सर्वोच्च उपलब्धि है, यह परम आनन्द है, इसी आनन्द के एक कण पर या इसके एक अंश पर, अन्य प्राणी रहते हैं।

जो व्यक्ति केवल विषय-सुख से सन्तुष्ट है, वह उस व्यक्ति की तरह है जो ३/४ धुँधले शीशों से आती हुई अतिमंद प्रकाश में ही पुस्तक पढ़ने का अभ्यस्त हो चुका है। एक प्राचीन ग्रन्थ में कहा गया है –

आत्माम्बुराशौ निखिलोऽपि लोको
मग्नोऽपि नाचामति नेक्षते च।
आश्चर्यमेतन्मृगतृष्णिकाभे
भवाम्बुराशौ रमते मृषैव।। [२७]

– सभी प्राणी आत्मारूपी-समुद्र में डूबे हुए हैं और प्यासे हैं ! तो भी वे न ही इसे देखते और न पीते ही हैं, बल्कि दूर कहीं मृगतृष्णा का पानी दिखाई देता है, तो वे अपनी प्यास बुझाने के लिये उसकी ओर दौड़ते हैं। लो ! यह स्थिति कितनी हास्यास्पद है ! हम रात-दिन सुख पाने की लालसा से इनकी ओर दौड़ रहे हैं, पर सुख की खान हमारे अन्दर ही है। उपनिषद भी कहती है – किसी के घर की भूमि के अन्दर खजाना छुपा हो, परन्तु उसे ज्ञान नहीं हो, तो रात-दिन उस पर होकर आते-जाते भी उसको जान नहीं सकता, इसलिए दरिद्रता में अपना जीवन-यापन करता है।[२८]

जब तक हमें इस अन्तर्निहित सुख की झलक नहीं मिलती, तब तक हम विषयों के पीछे भागते हैं। जब तक हमें इस सुख का अनुभव नहीं होता, तब तक हम चाहे कितना ही प्रयास करें, इन्द्रियों को विषयों से नहीं रोक सकते ! इन भोगों की लालसा या इन्द्रियों का विषयों की ओर खिंचाव हमेशा रहेगा। भगवद्गीता इसे 'रस'[२९] कहती है ! लेकिन एक बार यदि हमें इस ब्रह्मानन्द का कुछ भी रस मिल जाये, तो विषयों की सारहीनता व सभी सुखों के मुख्य स्रोत का पता चला जायेगा। इस स्थिति को बताने के लिए पंचदशी एक कौवे का उदाहरण देती है –'**काकाक्षिवदितस्ततः ... एकैव दृष्टिः काकस्य वामदक्षिणनेत्रयोः**'[३०] जिसकी एक ही पुतली होती है, जो आवश्यकता के अनुसार दाईं और बाईं दोनों आँखों के बीच घूमती है। उस अवस्था में जब वह ज्ञानी स्पष्ट रूप से देखता है कि सभी सुखों की उत्पत्ति अपने स्वरूप से है, तो जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द में निमग्न हो जाता है, फिर कभी विषय इसे नहीं छल सकते और ये रसहीन, तुच्छ हो जातें है। यही इस संसार में सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है, परमसम्पत्ति है, इस पुरुष की परम गति है, जिसे पा लेने पर और कोई कामना ही नहीं रहती, इसलिए वह आत्मकाम, पूर्णकाम और कृतकृत्य हो जाता है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ : १. छान्दोग्य उपनिषद ७/२२/१ **२.** तैत्तिरीय उपनिषद २/७/१ **३.** आनन्दस्त्रिविधो ब्रह्मानन्दो विद्यासुखं तथा। विषयानन्द इत्यादौ ब्रह्मानन्दो विविच्यते।। पञ्चदशी ११.११।। **४.** विषयेष्वपि लब्धेषु तदिच्छोपरमे सति। अन्तर्मुखमनोवृत्तावानन्दः प्रतिबिम्बति।। पञ्चदशी ११.८६।। **५.** तैत्तिरीय उपनिषद २/८/१ **६.** कठोपनिषद १/१/२६ **७.** पञ्चदशी ११/५१ **८.** श्रीमद्भगवद्गीता १८/३ **९.** जीवनमुक्तिविवेक, स्वामी विद्यारण्य, अनुवाद – स्वामी मोक्षदानन्द (अद्वैत आश्रम, २०१९), पृष्ठ - ८९ **१०.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ. १७, सं.१९६३ **११.** पञ्चदशी ११/५२ **१२.** कठोपनिषद २/३/११ **१३.** योगसूत्र २/४२ का व्यासभाष्य। **१४.** विवेकचूड़ामणि, श्लोक १२५ **१५.** छान्दोग्य उपनिषद ७/२३/१ **१६.** पञ्चदशी १४/३ **१७.** ईशोपनिषद ७ **१८.** श्रीमद्भगवद्गीता १८/३९ **१९.** श्रीमद्भगवद्गीता १८/३८ **२०.** कठोपनिषद १/१/१२८ शंकराचार्य भाष्य **२१.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, भाग-२ पृ. ९०२ **२२.** योगवाशिष्ठः २/२९/३५ **२३.** विवेकानन्द साहित्य खण्ड २ पृ. २२०, १९६३ **२४.** श्रीरामकृष्ण लीला-प्रंसग, भाग-२, पृ. ७४ **२५.** बृहदारण्यक उपनिषद ३/५/१ **२६.** वही, ४/३/३२ **२७.** श्रीभगवद्दादिशेष कृत परमार्थसारम्, श्लोक २ **२८.** छान्दोग्योपनिषद ८/३/२ **२९.** श्रीमद्भगवद्गीता २/५९ **३०.** पञ्चदशी १/१२८-१२९

प्रश्नोपनिषद् (४५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – सर्व-अर्थ-संग्रहार्थो द्वितीयो मन्त्रः – पिछले समस्त कथनों का संग्रह करने हेतु यह दूसरा (अगला) मंत्र है –

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति।।५/७।।

अन्वयार्थ – (ओंकार का उपासक) ऋग्भिः (ऋग्वेद-रूप 'अकार' के द्वारा) एतम् (इहलोक को पाता है), यजुर्भिः (यजुर्वेदरूप 'उकार' के द्वारा) अन्तरिक्षम् (अन्तरिक्षलोक को पाता है), सामभिः (सामवेदरूप 'मकार' के द्वारा), यत् (जिस) (अपरब्रह्म या ब्रह्मलोक को पाता है), तत् (उसे), कवयः (ज्ञानी लोग), वेदयन्ते (जानते हैं); (और) यत् तत् (वह जो), शान्तम् अजरम् अमृतम् अभयम् च (शान्त, अजर, अमर और अभय), परम् (परब्रह्म है), तम् (उसको) विद्वान् (उपासक), ओंकारेण एव आयतनेन (ओंकार रूप अवलम्बन से ही), अन्वेति इति (प्राप्त करता है)। इति (यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर पूरा हुआ)।।७।।

भावार्थ – ऋग्वेद के मंत्ररूप 'अकार' के द्वारा यह लोक प्राप्तव्य है; यजुर्वेद के मंत्ररूप 'उकार' के द्वारा अन्तरिक्ष-लोक प्राप्तव्य है और सामवेद के मंत्ररूप 'मकार' के द्वारा वह लोक प्राप्तव्य है, जिसे ज्ञानी लोग (अपरब्रह्म के रूप में) जानते हैं। ज्ञानी उपासक, ओंकार को ही आश्रय मानकर उस (परब्रह्म) तत्त्व को प्राप्त करता है, जो शान्त, अजर, अमर, अभय तथा सर्वोपरि है। (इस प्रश्न का उत्तर सम्पन्न हुआ)।

भाष्य – ऋग्भिरेतं लोकं मनुष्य-उपलक्षितम्, यजुर्भिः अन्तरिक्षं सोम-अधिष्ठितम्, सामभिर्यत्तद् ब्रह्मलोकम् इति तृतीयं कवयो मेधाविनः विद्यावन्तः एव न अविद्वांसः वेदयन्ते। तं त्रिविधं लोकम् ओंकारेण साधनेन अपरब्रह्म-लक्षणम् अन्वेति अनुगच्छति विद्वान्।

भाष्यार्थ – अज्ञानी जन नहीं, अपितु केवल मेधावी प्रबुद्ध लोग यह जानते हैं कि ऋग्वेद के मंत्रों द्वारा यह लोक, उपलक्षण से मनुष्यलोक; यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा चन्द्रमा में अधिष्ठित अन्तरिक्ष-लोक और सामवेद के मंत्रों द्वारा तीसरे अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त किया जाता है। विवेकवान् उपासक – ओंकार की उपासना के द्वारा 'अपरब्रह्म' नामक इस त्रिविध लोक की प्राप्ति करता है।

तेन एव ओंकारेण यत् तत्परं ब्रह्म-अक्षरं सत्यम् पुरुष-आख्यं शान्तं विमुक्तं जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-आदि-विशेष-सर्व-प्रपञ्च-विवर्जितम् अतएव अजरं जरावर्जितम् अमृतं मृत्युवर्जितम् अत एव यस्मात् जरा-विक्रिया-रहितम् अतः अभयम्, यस्माद्-एव अभयं तस्मात् परं निरतिशयम्; तद् अपि ओंकारेण आयतनेन गमन-साधनेन अन्वेति इत्यर्थः। इति शब्दो वाक्य-परिसमाप्ति-अर्थः।।५/७।।

उसी ओंकार के द्वारा, वह उस तत्त्व को प्राप्त करता है, जो सर्वोच्च ब्रह्म है, जो अचल तथा सत्य है, जिसे पुरुष कहते हैं, जो सर्वव्यापी है, जो शान्त, स्वाधीन तथा जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति आदि से भिन्न और सम्पूर्ण जगत्-रूप प्रपंच से अतीत है; अतएव जरा (वार्धक्य) से रहित है, अमर अर्थात् मृत्यु से रहित है; और चूँकि वह वार्धक्य आदि परिवर्तनों से अस्पृश्य है, अतः अभय है; और अभय होने के कारण वह परम् या सर्वश्रेष्ठ है; उसे भी इस आश्रय-रूप गमन-साधन ओंकार के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसका यही तात्पर्य है। इति शब्द – प्रकरण समाप्ति का सूचक है।।७।।

।। इति प्रश्नोपनिषद्-भाष्ये पंचमः प्रश्नः।।

(क्रमशः)

हिन्दी साहित्याकाश में प्रखर सूर्य श्रीराम

उत्कर्ष चौबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग रामकाव्य परम्परा की दृष्टि से बहुत समृद्ध रहा है। इसमें भारतेन्दु युग की अपेक्षा रामकाव्य की रचनाएँ अधिक इस युग में हुई हैं। रामकाव्य को आधुनिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है तथा उनके पात्रों को मनुष्य के रूप में व्याख्यायित किया गया है। भारतेन्दु युग में, आधुनिक युग में रामकथा के जो बीज बोए गये थे, उसको महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने पल्लवित और पुष्पित किया। द्विवेदीजी ने संस्कृत के ग्रन्थ रघुवंश का गद्यानुवाद भी किया था। लाला भगवान दीन द्वारा रामकथा से सम्बन्धित रामगिर्याश्रम एवं शृंगार शतक दो रचनाओं को ब्रज भाषा में लिखा गया है। रायदेवी प्रसाद पूर्ण द्वारा रचित ब्रज भाषा में रामकाव्य सम्बन्धी दो ग्रन्थ हैं – रावण विरोध और राम का धनुर्विद्या शिक्षण।

मिश्रबन्धुओं ने ब्रज भाषा में मात्र एक मौलिक काव्य ग्रन्थ की रचना की है – लवकुश चरित्र। इसमें उत्तर रामकथा वर्णित है। इन्होंने इस काव्य ग्रन्थ में राम-राज्याभिषेक, सीता-निर्वासन, लवकुश-जन्म महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, अश्वमेध यज्ञ क्रम में राम की सेना से लवकुश का युद्ध आदि वर्णन किया गया है। लवकुश चरित्र में संस्कृत, फारसी और खड़ी बोली के शब्दों और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है।

गया प्रसाद शुक्ल स्नेही जी की रामवनगमन, लक्ष्मण मूर्च्छा या बन्धु विलाप, कौशल्या विलाप, अशोकवाटिका में सीता आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' नाम से बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने रामकथा सम्बन्धी दो कृतियों की रचना की हैं – गजपुरी की इन्द्रधनुष भंग तथा लक्ष्मण कुमार।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के प्रख्यात कवि, उपन्यासकार आलोचक एवं इतिहासकार हैं। जिन्होंने वीरवर सौमित्र, उर्मिला, सुतवटी, सती सीता और वैदेही वनवास आदि रचना की है। वैदेही वनवास खड़ी बोली में रचित प्रबन्ध काव्य है। इसमें राम के उत्तर जीवन से सम्बन्धित कथा है। इसकी कथा-वस्तु में नवीनता यह है कि सीता अपने लोकापवाद को शमित करने हेतु स्वयं वन जाती हैं और लोकापवाद शान्त हो जाने के बाद वापस लौट आती हैं –

करभवहित सच्चे जी से, मुझमें निर्भयता होगी।
जीवन धन के जीवन में, मेरी तन्मयता होगी।।

वैदेही वनवास अठारह सर्ग में विभाजित है। खड़ी बोली में रचित यह ग्रन्थ महाकाव्य की श्रेणी में गिना जाता है।

द्विवेदी युग के प्रमुख रामकथाकार मैथिलीशरण गुप्त ने रामकथा को आधार बनाकर तीन कृतियों की रचना की है, साकेत, प्रदक्षिणा एवं पंचवटी। श्रीरामचरित मानस के बाद दूसरा सबसे प्रसिद्ध रामकाव्य ग्रन्थ है – साकेत, जो १२ सर्गों में विभाजित है। इसका मुख्य विषय उर्मिला की विरह कथा है और इसी को आधार बनाकर पूरी रामकथा कही गयी है। ग्रन्थ के आरम्भ में उर्मिला का परिचय इस प्रकार दिया गया हैं –

अरुण पट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
किस कृति के अर्थ है इसकी कला?
स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही उर्मिला।

सदियों से चली आ रही उर्मिला की उपेक्षा साकेत में गुप्तजी ने समाप्त की है। उर्मिला के विरह का चित्रण अत्यन्त मार्मिक गहरी संवेदनाओं से ओत-प्रोत है। सीता राम के साथ वन को चली जाती हैं, लेकिन उर्मिला राम के साथ वन को नहीं जा पाती हैं। इसमें उनके मन की पीड़ा और बढ़ जाती है। इसका जैसा करुण चित्रण साकेत में हुआ है, वैसा अन्य किसी रामकाव्य सम्बन्धी ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता है। वहीं दूसरी ओर राम कर्तव्यपरायणता और पितृ आदेश को जीवन का मूल ध्येय मानते हुये अद्भुत आदर्श की स्थापना करते हैं। दशरथ सत्य पर सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर हैं, तो राम किसी भी स्वार्थवश अपने धर्म से विमुख नहीं होना चाहते हैं। अयोध्यावासियों को सम्बोधित करते हुये वे कहते हैं –

मैं सर्वधर्म से विमुख नहीं होऊँगा कभी,
इसलिये तो मुझे चाहते हो सभी।
पर मेरा यह विरह विशेष विलोल कर।
करो न अनुचित कर्म धर्मपथ रोक कर।।

प्रदक्षिणा एक तरह से रामकथा की संक्षिप्त सूची है। जो काव्य रूप में प्रस्तुत की गयी है। इसमें राम-जन्म से लेकर रावण-विजय तक की कथा का वर्णन किया है, जो काव्य के रूप में, भाव में तथा अलंकारों से रंजित ३०१ चौपाई में गाया गया है। शायद ही ऐसा कोई बालक हो, जिसने अपने विद्यालय में पंचवटी नहीं पढ़ी हो। इसमें लक्ष्मण का व्रत और तपोनिष्ठा के महत्त्व को कवि ने रेखांकित किया है। उदाहरणार्थ –

जाग रहा यह कौन धनुर्धर जबकि भुवन भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा बना दृष्टिगत होता है।।

लक्ष्मण के चरित्र को उज्ज्वल चरित्र के रूप में दिखाया है। राम के रक्षक रूप में रहकर वह अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। सीता के हास-परिहास ने काव्य को रोचक बना दिया है।

रामचरित उपाध्याय ने रामचरित चन्द्रिका और रामचरित चिन्तामणि नामक ग्रन्थों की रचना की है। उपाध्यायजी ने अपनी रामकथा के माध्यम से आधुनिक युग की विचार-धारा से अपने पात्रों को प्रभावित दिखाकर कहा है कि वे विकासोन्मुख जीवन से ओत-प्रोत हैं। रामस्वरूप टंडन द्वारा रचित सीता परित्याग एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें राम के राज्याभिषेक के बाद की कथा से लेकर सीता परित्याग तक की कथा का वर्णन है। विष्णु द्वारा रचित सुलोचना सती नामक कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें सुलोचना के पतिव्रत-धर्म और सती होने की कथा है। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र प्रथम शोधकर्ता हैं, जिन्होंने गुलाम भारत के अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी में शोध प्रबन्ध तुलसी दर्शन प्रस्तुत कर डी, लिट की उपाधि ग्रहण की। रामराज्य, कौशल किशोर, साकेत संत, तुलसीदर्शन, मानस में रामकथा आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

छायावाद द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियों को पीछे छोड़कर अलग और नये आदर्शों के साथ आगे बढ़ा है, जिसमें आत्माभिव्यक्ति, वैयक्तिकता, शृंगार-निरूपण आदि की प्रमुखता रही है। छायावादी रामकाव्य को आधुनिक प्रवृत्तियों के अनुसार रचा गया है। पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने रामकृष्ण मठ की हिन्दी मासिक पात्रिका समन्वय के सह-सम्पादक के रूप में कई वर्षों तक कार्य किया। बंगला श्रीरामकृष्ण-कथामृत का सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के रूप में इन्होंने बड़ी ही निष्ठा के साथ किया। इनके अधिकतर काव्य भगवान श्रीरामकृष्ण की शिक्षाप्रद कथाओं को आधार बनाकर लिखे गये हैं तथा अन्य रचनायें भी रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित हैं। बेलूड़ मठ में स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित दुर्गापूजा की छाप इन पर ऐसी पड़ी कि इन्होंने अपने निजी जीवन के संघर्षों को राम की शक्ति पूजा के रूप में अभिव्यक्त किया। निराला ने अकाल बोधन के कथानक को मुक्त छन्दों में प्रयुक्त कर राम द्वारा शक्ति आराधना का वर्णन किया है। राम अपनी आराधना असफल देख, अपने पुण्डरीकाक्ष अर्पित करने को जैसे ही उद्यत होते हैं, देवी प्रकट हो जाती हैं और विजय का आशीर्वाद देकर शक्ति राम की ओर हो जाती है। अन्त में राम, रावण पर विजय प्राप्त करते हैं –

होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।।

रावण पर राम को विजय दिलाकर और सीता को स्वतन्त्र कर भारत को भी स्वतन्त्र करने की बात निराला करते हैं। निरालाजी ने पंचवटी प्रसंग में आये हुए प्रसंगों को नाटकीय संवादों के माध्यम से बहुत आकर्षक बना दिया है। पंचवटी में राम कैसे रहते थे, क्या-क्या बातें होती थीं, क्या-क्या विशेष घटनाएँ घटती थीं, उसको जैसे भावुक हृदय से व्यक्ति सोचता है, वैसा चित्रण किया है। भगवान राम जानकीजी से कहते हैं –

छोटे से घर की लघु सीमा में बँधे हैं, क्षुद्र भाव,
यह सच है प्रिये,
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है,
सदा ही निःसीम भूमि पर।

यह उक्ति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में काफी प्रासंगिक है। जब भौतिकवाद के इस युग में मानव भावों को अनदेखा कर महलों और सुख-सुविधाओं में प्रेम खोजता है।

छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त की रामकथा सम्बन्धी रचना अशोक वन एक लघु नीति काव्य है। इसमें उन्होंने राम, सीता और रावण को प्रतीक के रूप में लिया

है। रावण भौतिकता का प्रतीक है, जो अपनी मृग रूपी माया की सहायता से सीता (हृदय की चेतना) को हरण करता है और अपने अशोक वन में बन्दी बनाकर रखता है। राम आध्यात्मिकता के प्रतीक हैं, जो भौतिकता के ऊपर विजय प्राप्त कर हृदय रूपी जीवन को मुक्त कराते हैं। अशोक वन के माध्यम से पंतजी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आज भी भौतिकता (रावण) और आध्यात्मिकता (राम) का द्वंद्व मनुष्य के हृदय में चलता रहता है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने उर्मिला नामक ग्रन्थ की रचना की है। जैन आचार्य तुलसी द्वारा रचित अग्नि परीक्षा एक खण्ड काव्य है। इसका आधार विमल सूरि द्वारा रचित पउम चरित है। इसकी कथा सीता के वनगमन और राम-मिलन पर आधारित है। नरेश मेहता द्वारा रचित संशय की एक रात एक सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें दशरथ और जटायु की प्रेतात्मा राम को उपदेश देते हैं। राम संशय-ग्रस्त हैं कि युद्ध करें या न करें। युद्ध से ही शान्ति प्राप्त होनी है। युद्ध से ही मानव को स्वतन्त्रता मिलेगी। अपनी शंका की अभिव्यक्ति राम साँझ से इस प्रकार करते हैं –

ओ अनाधित सूर्यास्तवली, भाद्रपद की साँझ,
युद्ध के उपरान्त होगी शान्ति।

भारतीय स्वातंत्र्योत्तर साहित्य गद्य के रूप में अपने स्वर्णिम गौरव को प्राप्त करता है और साहित्य की यह विधा भी रामकथा से अस्पृश्य नहीं रह जाती। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने रामकथा पर आधारित वयं रक्षाम: नामक उपन्यास की रचना की है। वयं रक्षाम: में रावण और उसकी संस्कृति का परिचयात्मक विवरण दिया गया है। रामचरित उपन्यासों की परम्परा में भगवान सिंह का पौराणिक उपन्यास अपने-अपने राम बहुत चर्चित रहा है। डॉ. रामनाथ त्रिपाठी का रामकथा पर आधारित उपन्यास रामगाथा अध्ययन और अनुसंधान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास में रामकथा यथार्थवादी तथा आदर्शवादी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं।

कुछ काल पहले ही जहाँ एक ओर अल्लामा इकबाल जैसे मुसलमान कवियों ने "**है राम के वजूद पे हिन्दोस्ताँ को नाज, अहल-ए-नजर समझते हैं इस को इमाम-ए-हिन्द**" लिखकर स्वनाम धन्य हुए, तो वहीं बाबरी विध्वंस के पश्चात् कैफ़ी आज़मी की नज्म 'राम का दूसरा वनवास' ने सस्ती सुर्खियाँ बटोरी। एक ओर जहाँ कामिल बुल्के नामक ईसाई पादरी रामकथा नामक शोध प्रबन्ध लिखकर इस कथा के प्रेमी होने का स्वांग रचता है, तो ठीक उसी समय धर्मसम्राट स्वामी हरिहारानन्द सरस्वती 'करपात्रीजी' महाराज ने रामायण मीमांसा लिखकर बुल्के के समस्त आक्षेपों-प्रक्षेपों का खण्डन किया।

साहित्य में प्रदर्शन की भी अहम् भूमिका रही है। रामकथा के मंचन की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितने स्वयं श्रीराम हैं। राम कथा चार रूपों में ही प्राप्त होती है –साहित्यिक (लिखित ग्रंथों के रूप में), वाचक (गायन के रूप में), चित्रित (चित्र तथा शिल्प के रूप में) तथा मंचीय (अभिनय एवं मंच पर कलात्मक मंचन के रूप में)। तुलसीदासजी ने रामलीला की वाचिक परम्परा तक सीमित रामकथा को नया आयाम देते हुए इसके दृश्य-श्रव्य परम्परा का प्रारम्भ किया। तो वहीं दूरदर्शन के आगमन पर रामानन्द सागर के अथक प्रयासों से सम्पूर्ण रामायण मल्टीमीडिया साहित्य के रूप में उभर कर आया, जिसने सामाजिक जागरण में अहम् भूमिका निभाई।

भगवान श्रीराम की महिमा अपरम्पार है। इसीलिये सदियों से समाज और साहित्य के केन्द्र में हमेशा राम रहे हैं। साहित्य में समय-समय पर श्रीराम की विविध कथाओं को, विविध रूपों को रूपायित किया गया है – "**हरि अनंत हरिकथा अनंता।**" यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि श्रीराम के ऊपर जितनी रचनाएँ सम्भव हुई हैं, शायद ही किसी अन्य आराध्य देवी-देवताओं पर हुई हों। साहित्याकाश में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को विविध रूपों में रूपायित किया गया है। वस्तुत: रामकथा हमारी स्मृति का अनिवार्य अंश है। भारतीय संस्कृति और जन-मन की आन्तरिक सरंचना के ताने-बाने को रचने में रामकथा की भूमिका सर्वाधिक है। मानवीय चेतना के उदात्त मूल्यों का सृजन रामकथा के मूल में है। तभी तो जिसने भी श्रीराम का गुणगान किया, उसकी कृति अमर हो गई। इसीलिये तो मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा में कहते हैं –

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाये, सहज संभाव्य है।।

○○○ (समाप्त)

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२७-०४-१९६७

रात के एक बजकर चार मिनट का समय है। महाराज गुनगुना रहे हैं –

''माँ, माँ ! कहकर पुकारो, न भाई।
माँ को कहाँ पाओगे, रे भाई।।
रहती तो, वह गोद में लेती।
वह सर्वनाशी जीवित ही नहीं।।
विमाता की गोद में देकर,
कुश के पुतले का अग्निदाह करके,
अशौच के बाद पिण्ड-दान करके,
कालाशौच के लिए काशी जाता हूँ।''

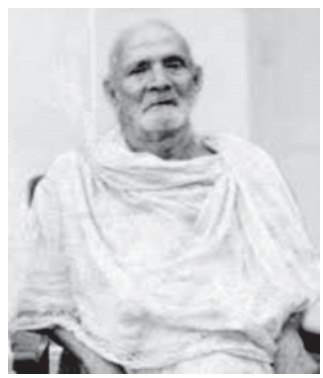

गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रथम दो श्लोकों की मौखिक आवृत्ति की। फिर गाना गाने लगे –

''अमरूद कैसा गुण तुम्हारा,
कच्चा खाऊँ या पक्का खाऊँ।
अधपके की तो कुछ बात ही नहीं,
उससे सबकी तृप्त हो रसना।।''

इसके बाद महाराज चुप हो गए।

एक दिन रात के एक-दो बजे होंगे। महाराज के पास ही सेवक था। सेवक बीच-बीच में प्रश्न करता, महाराज, ठीक अभी क्या चिन्तन कर रहे हैं? उन्होंने तत्क्षण उत्तर दिया – कामारपुकुर अथवा दक्षिणेश्वर या बेलूड़ मठ। उस दिन प्रश्न के उत्तर में बोले, ''सर्वव्यापी श्रीरामकृष्ण।'' सेवक ने कहा – ''सर्वव्यापी चैतन्य है। श्रीरामकृष्ण व्यक्ति हैं। किन्तु सर्वव्यापी श्रीरामकृष्ण का चिन्तन कैसे होता है?''

वे केवल इतना ही बोले, ''हो तो रहा है।''

२५-०५-१९६७

अपराह्न लगभग चार बजे उदय महाराज आए।

सेवक – महाराज, उदय महाराज प्रसाद लाए हैं।

महाराज – किसका प्रसाद?

सेवक – ठाकुर का।

महाराज – किस उपलक्ष्य में?

सेवक – ऐसे ही।

महाराज के 'दो' कहते हुए हाथ बढ़ाने पर सेवक के हाथ मुड़े कागज में रखे प्रसाद को स्पर्श करके कागज सहित प्रसाद को मुट्ठी में लेकर महाराज ने मुख में डाल लिया। नेत्रों और मुख पर शिशु का दिव्य आनन्द। उदय महाराज ने आनन्द से गद्‌गद् होकर यही कहा, 'जय माँ, माँ, माँ !''

३०-०५-१९६७

एक भक्त ने महाराज के दो फोटो खीचें।

महाराज ने अपराह्न में कहा, ''मैं तो उनके ऊपर निर्भर होकर पड़ा हुआ हूँ।''

३१-०५-१९६७

सेवक – महाराज, पाकिस्तान के साथ युद्ध में आपको सेनानायक बनाकर भेजा जाएगा। लड़ने जाएँगे?

महाराज - हाँ।

सेवक – कैसे लड़ेंगे?

महाराज – तुम्हारे द्वारा लड़ाई करूँगा।

१२-०६-१९६७ के बाद किसी दिन शरीर त्याग के दो तीन दिन पूर्व। सेवक बोला – एक प्रश्न है, क्या आप ठाकुर को देख पाते हैं?

महाराज – हाँ

सेवक – माँ को?

महाराज – हाँ

सेवक – स्वामीजी को?

महाराज – हाँ।

सेवक – क्या वह रूप (मूर्ति) स्थिर रहता है या हिलता-डुलता है?

महाराज – ठाकुर और स्वामीजी की मूर्ति स्थिर रहती है। माँ की मूर्ति हिलती-डुलती है।

सेवक – बातें करते हैं?

महाराज – अब अधिक प्रश्न मत करो।

१२-०६-१९६७

प्रात: काल साढ़े सात बजे हैं। डॉक्टर बाबू पाँच मिनट पहले महाराज को देखकर गए हैं। महाराज की अनुमति मिलने पर महाराज को लेकर पेराम्बुलेटर पर भ्रमण कराया जाएगा। सेवक महाराज को लस्सी पिला रहे हैं, थोड़ा-थोड़ा करके चम्मच से पिला रहे हैं। कई बार पीने की इच्छा नहीं होने पर वे मुख बन्द कर लेते हैं, कभी-कभी थोड़ा आग्रह करके पिलाना पड़ता है। दो चम्मच ठीक ढंग से पिए, तीसरी बार मुख में नहीं गया है, बाहर गिर गया। सेवक घबड़ा गया, नाड़ी देखी गई, तो वह धक्-धक् कर रही थी, किन्तु यह तो सेवक का नाड़ी के बारे में अपना ही अनुभव था। सेवक जल्दी से डॉक्टर बाबू को बुलाने गया। डॉक्टर लाहिड़ी ऑक्सीजन और कोरामिन दवा लेकर आने को कहकर महाराज को देखने चले गए। ऑक्सीजन और कोरामिन दिया गया, किन्तु तब महाराज अनन्त लोक के निवासी हो गए थे।

सेवक की डायरी में केवल दो शब्द लिखे हैं – 'सब समाप्त।''

दो दिन बाद, सब सामान्य होने पर कक्ष के सामने रामगति महाराज के साथ भेंट हुई। वे वेदान्त दर्शन ग्रंथ के लेखक और प्रेमिक साधु थे। सेवक ने उनसे पूछा, ''महाराज, प्रेमेश महाराज माँ के शिष्य थे और काशी में देहान्त हुआ। उनकी अनुभूतियों आदि की बातें तो छोड़ ही दिया है, किन्तु उनके शरीर में तो कोई बाह्य लक्षण नहीं देख पाया, जैसे स्वेद, रोमांच, पुलक आदि? यह मानो एक घड़ी चलते-चलते रुक गई !''

रामगति महाराज बोले, ''इनकी तो कोई उर्ध्वगति नहीं होगी। उपनिषद में है – '**न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति, इहैव प्रविलीयन्ते**।'' प्रारब्धवश शरीर में प्राण धक्-धक् कर रहा था। प्रारब्ध समाप्त होते ही प्राण महाप्राण में लीन हो गया, वे जो थे, वही हो गए। '**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**।''

ऐसे उच्च तत्त्व और भाव को धारण करना और समझना सेवक की सामर्थ्य में नहीं था। तोते की तरह आत्मा के उड़ जाने की बातें उसने सुनी थी। एक दिन बेलूड़ मठ के प्रधान कार्यालय में अनेक पुराने कागज-पत्रों को खोजने के क्रम में एक पत्र हाथ लगा। वह पत्र स्वामी अखण्डानन्द महाराज के हाथ का लिखा था। उन्होंने वह पत्र ०४ सितम्बर, १९१८ को सारगाछी से प्रेमेश महाराज को लिखा था। पूज्यपाद बाबूराम महाराज के महाप्रयाण के बाद का पत्र है। ठाकुर और उनके लीलासहचरों के बीच कैसा सम्बन्ध था, यह साधारणतया बोधगम्य नहीं हो पाता है। किन्तु प्रेमेश महाराज की लेखनी से यह उच्च आध्यात्मिक तत्त्व कैसे निकला था, यह साधना का विषय है। हम इस अद्भुत पत्र का उल्लेख कर लेखनी को विराम देते हैं –

श्रीरामकृष्ण:

श्रीरामकृष्ण मिशन आश्रम
(अनाथालय)
सारगाछी, पोस्ट – महुला
जिला – मुर्शिदाबाद
०४ सितम्बर, १९१८

श्रीयुत इन्द्रदयाल बाबू,

लगभग २०-२२ दिनों के बाद यहाँ ३-४ दिनों पूर्व आया, तो आज मुझे आपका पत्र मिला है। दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर ही मेरा कैसा भावान्तर हुआ, यह शायद आप श्रीमान जितेन बाबाजी के पत्र से पहले ही जान गए होंगे। रोमांचित शरीर और अश्रुविगलित होकर मैंने आपके उस पत्र को बहुत देर तक पढ़ा है। श्रीश्री बाबूराम महाराज और श्रीश्री महाराजगणों के सम्बन्ध में आपने जो कुछ लिखा है और अनुभव किया है, वह केवल श्रीश्रीठाकुर के अन्तरंग जनों के लिए ही सम्भव है। उनकी कृपा से आप उनके अन्दर की बातें एक-एक करके इतने सहज ढंग से जान सके हैं, श्रीमानजी के मुख से उस दिन आपके बहुत से गुणानुवाद सुन करके भी उसे समझ नहीं सका हूँ। धन्य हैं आप!

आपका यह सौभाग्य बहुत तपस्या द्वारा प्राप्य है। एकमात्र हमारे दयालु ठाकुर की कृपा से ही इस प्रकार सब सुलभ होता है।

श्रीश्री बाबूराम महाराज हमारे श्रीश्रीठाकुर के कितने आदर और स्नेह-दुलार के धनी थे, उसे आपने जैसा समझा है, वैसी समझ एकमात्र वे ही उत्पन्न कर सकते हैं। पहले भी एक के बाद एक कई बड़े लोगों के 'संरक्षणतुल्य शरीर' चले गए, किन्तु ऐसा हृदयविदारक वियोग और किसी का नहीं हुआ।

सुना है कि हमारे श्रीश्रीमहाराज भी और सम्भवत: हमारे चिर प्रेममय श्रीश्री दादा (बाबूराम महाराज) के लिये आकुल क्रन्दन-चीत्कार करते थे। यह बात सम्प्रति मठ से वस्त्र-वितरण के लिए यहाँ आए हुए श्रीमान भूमानन्द स्वामी के मुख से ही सुनी है। इधर यह समाचार पाकर इतने दिनों तक रो-रोकर भी उनके वियोगजन्य दुख को भूल नहीं पा रहा हूँ।

श्रीश्री हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) भी लगभग एक वर्ष से 'भीष्म की तरह शरशय्याशायी' होकर रह रहे हैं। उनका एक और ऑपरेशन हुआ है और थोड़ा बुखार भी है। कल उन्हें ज्वर नहीं आया, ऐसा समाचार पाकर थोड़ा आश्वस्त हूँ। जिस तरह सब यहाँ से 'खिसकते' जा रहे हैं, तो कह नहीं सकता कि श्रीश्रीठाकुर के मन में और भी क्या कुछ है। अनारस के पौधों को पाकर आश्रम को विशेष लाभ हुआ है। आप मेरा बहुत-बहुत धन्यवाद और स्नेहाशीर्वाद स्वीकार कीजिएगा। यहाँ सब कुशल है। बीच-बीच में कुशल-समाचार देते रहिएगा। पुनः, भूमानन्दजी यहाँ की स्थिति देखकर आज मठ के लिये प्रस्थान कर चुके हैं। शीघ्र ही यहाँ से वस्त्र का वितरण होगा।

इति,

शुभाकांक्षी

श्रीअखण्डानन्द

○○○ (समाप्त)

अवश्य ही वे अहेतुककृपासिन्धु हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अपने सृष्ट जीवों के प्रति उनकी कितनी कृपा है, कितनी दया है, यह यदि तुम जरा सा भी जान पाते, तो फिर वे कृपासिन्धु हैं या नहीं, यह प्रश्न ही तुम्हारे मन में न आता। यह जो जीवों के दुख से कातर हो उनके उद्धार के लिए वे स्थूल देह धारण कर जगत में अवतीर्ण होते हैं, यही तो बड़ा प्रमाण है कि वे कृपासिन्धु हैं। वे तो सर्वदा पूर्ण हैं, उनके लिए पाने या चाहने के लिए कुछ भी नहीं है। फिर भी, वे कृपा के वशीभूत हो जीवोद्धाररूप कर्म में प्रवृत्त होते हैं। उनके हृदय में एकमात्र वृत्ति है कृपा प्रेम। वे कितने कृपालु हैं, यह क्या शब्द द्वारा समझाया जा सकता है? यह तो अनुभव की वस्तु है। मनुष्य तो खेल में मग्न है, उनकी कृपा को कहाँ जानना चाहता है? ठाकुर कहते थे, 'जीव भगवान की ओर यदि एक पग आगे बढ़ने की चेष्टा करे, तो भगवान उसकी ओर दस पग आगे आ जाते हैं।' इतनी अधिक है उनकी दया। उनकी कृपालुता में सन्देह मत करो। उस भाव को मन में आने तक न दो। उन्हें पुकारते जाओ प्रेम के साथ; उनकी कृपा से प्राण और मन परिपूर्ण हो जाएँगे। यह सब उपलब्धि क्या एक दिन में होता है या एकदम हो जाती है। क्रमशः सब कुछ होगा, सब कुछ प्राप्त करोगे। हम लोग भी यदि ठाकुर को नहीं देखते, तो क्या समझ सकते थे कि भगवान की जीवों के ऊपर कितनी जबरदस्त कृपा है? वे कृपा करने के लिए छटपटाते थे, रोते थे। पर उनकी कृपा को आन्तरिक भाव से कौन चाहता है? मनुष्य तो वैषयिक आनन्द में मत्त हो रहा है। जो भगवदानन्द चाहता है, वह पाता भी है।

– स्वामी शिवानन्द जी महाराज (आनन्दधाम की ओर, पृष्ठ ५८-५९)

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/९)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अहंकार अन्य दुर्गुणों का प्रेरक

जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं कि गुण एक साथ नहीं ठहर पाते। परन्तु दुर्गुण एक के बाद एक आकर हमारे जीवन में स्थिर हो जाते हैं। देवताओं और असुरों के स्वभाव की विशेषता भी यही है। असुर तो सब एकजुट हो जाते थे। परन्तु देवता एक दूसरे के साथ जुड़ नहीं पाते थे। उनमें परस्पर ईर्ष्या, जलन, दाह का भाव दिखाई देता था। असुरों के जीवन में एकता रहने के कारण वे एक साथ चोट करके देवताओं को हरा देते थे।

अहंकार भी एक ऐसा ही दुर्गुण है कि अपने साथ एक-एक करके अनेक दुर्गुणों को जोड़ लेता है। नारदजी के जीवन में पहले कामदेव आया, तो उसे उन्होंने क्षमा कर दिया। कामदेव चला गया, पर मुनि के मन में अपनी इस जीत का अहंकार आ गया। मन में विचार करने लगे कि संसार में उनके जैसा कामजयी दूसरा कौन है? इस प्रसंग में शंकरजी का नाम तो याद आ गया, किन्तु साथ ही यह भी याद आ गया कि कामदेव को तो शंकरजी ने जीत लिया था, पर अपने क्रोध को नहीं जीत पाए थे और उन्होंने कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि में भस्म ही कर दिया था। मैंने तो कामदेव को जीतकर उसे क्षमा भी कर दिया। क्रोध पर भी मुझे विजय मिल गई। इसलिए मुझसे बढ़कर कोई नहीं है।

मन में अहंकार ने जब घर कर ही लिया, तो उसके पीछे-पीछे अन्य दुर्गुण भी चले आए। विश्वमोहिनी रूप के प्रति कामान्ध भी हुए। भगवान पर क्रोध भी किया। अपने भगवान से कटु शब्द कहे। नीचे गिरने की गीता में वर्णित समस्त प्रक्रिया पूरी कर ली। विषय-चिन्तन से उस विषय के संग की इच्छा, संग की आसक्ति से काम बढ़ता है कि वह वस्तु मेरी हो जाए। न मिलने पर क्रोध और क्रोध से स्मृति का, बुद्धि का नाश और अन्त में मनुष्य ही नष्ट हो जाता है। भक्त अपने भगवान से कह देता है कि ये वृत्तियाँ भी आपने ही बनाई हैं। अत: इन्हें आप ही को सौंपता हूँ। भक्त का जीवन साधक का होता है। इसका सारा अहंकार भगवदर्पित रहता है। इसीलिए वह निरहंकारी रहता है।

भक्त सुख-दुख से परे तथा क्षमाशील

भक्त का अगला गुण है सुख और दुख में समान भाव रखना। संस्कृत में ख का अर्थ होता है आकाश। आकाश का तात्पर्य हम हृदयाकाश समझें, जिसमें भावनाएँ उठा करती हैं, जिनके कारण हमको तरह-तरह की अनुभूतियाँ होती हैं। सुख अर्थात् अच्छा आकाश। दु:ख अर्थात् बुरा आकाश। आकाश पर जैसे चाँदनी छिटकी हो। मन्द समीर बह रहा हो, उस समय आकाश निर्मल-स्वच्छ लगता है। जिस समय आँधी चलने पर आकाश में धूल-तिनके-पत्ते छा जाते हैं, तब आकाश धूमिल-गन्दा लगता है। उसी तरह हमारे मन में जब काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि की आँधी बहती है, तब मनुष्य का मन दु:खी हो जाता है और जब मन के भीतर भगवान के प्रेम और भगवान की भक्ति की चाँदनी छिटकी हो, भक्ति की मन्द-शीतल समीर बह रही हो, तब आनन्द की अनुभूति होती है। इसीलिए कहा कि सुख और दु:ख; दोनों में चित्तवृत्तियों को समान बनाने का प्रयत्न करो।

इसका सूक्ष्म विश्लेषण करें, तो हम पाएँगे कि मनुष्य जिस तरह दु:ख से परेशान होता है, उसी तरह सुख से भी परेशान होता है। सुख के लोभ के कारण ही तो हम दिन-रात भटक रहे हैं। सुख की डोरी से बाँधकर मनुष्य को चाहे जितना भी नचाया जा सकता है। कभी आपने कल्पना की है कि सुख को पाने के लिए हम कितना दु:ख मोल लेते हैं?

मनुष्य के मन में दु:खीपन आता है परमात्मा के अज्ञान से। भूत और भविष्य के दु:ख और चिन्ता खींच लाकर भी मनुष्य वर्तमान के सुख से वञ्चित हो जाता है। 'मैं दु:खी' की रटन लगाकर मनुष्य अपने-आपको आत्म-सम्मोहित कर लेता है। रटना ही है, तो कहो – ''सोऽहं', कहो – 'अहं ब्रह्माऽस्मि'। ज्ञान की इतनी ऊँचाई पर जाने का भय लगता हो, तो कहो – 'दासोऽहं'। जिन चरणों में आनन्द मूर्तिमान होकर रहता है, उन चरणों का मैं दास हूँ। फिर मुझे दु:ख हो ही कैसे सकता है? मन की चाही हुई परिस्थिति तो सदा बनी नहीं रह सकती। तो जब जैसी परिस्थिति उपस्थित हो, उसी में सुख मानने का अभ्यास करना चाहिए। सुख परिस्थितियों से नहीं मिला करता। वह तो मन है, जो सुख लिया करता है। मन यदि परिस्थितियों से मुक्त है, तो आप सुख ले सकते हैं, पर मन यदि परिस्थितियों से बँधा हुआ है, तो कैसी भी परिस्थिति आ जाए, उसके लिए तो सदा दु:ख ही दु:ख है। सुख तो केवल भगवान के चरणों में ही है। नहीं तो ये सुख और दु:ख तो सब स्वप्नवत् हैं।

एक किसान का इकलौता बेटा मर गया, तो भी वह रोया नहीं। इस बात पर उसकी पत्नी उसे बहुत कोसने लगी, तब वह बोला, 'मैं इस एक बेटे के लिए रोऊँ या उन सात बेटों के लिए रोऊँ, जो कल रात स्वप्न में मेरे साथ थे और बहुत आज्ञाकारी तथा सुशील थे? वह सपना था, तो यह भी तो सपना ही है!' इसे ही कहते हैं – समदु:खसुख:। जो भक्त होता है, वह हर परिस्थिति में अपने प्रियतम की ही इच्छा देखता है और प्रसन्न रहता है। दु:ख और सुख, संयोग और वियोग, सभी द्वन्द्वों में भगवान के चरणों का साथ बना रहे, यह भक्त की कामना है, वही उसका वास्तविक सुख है, सच्चा आनन्द है।

क्षमा दुर्बल का धर्म नहीं

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के समक्ष मनुष्य के जीवन में प्रकाशित होनेवाले गुणों का वर्णन कर रहे हैं, जिससे अर्जुन को यह मालूम हो जाए कि यथार्थ में भक्त कैसा होता है? जैसेकि दूध के गुण बताए जाते हैं, धवलता, तरलता, मधुरिमा।

भगवान कहते हैं कि भक्त को क्षमाशील होना चाहिए। यह क्षमा दुर्बल का धर्म नहीं है, यह हमें याद रखना चाहिए। जिसके भीतर बल है, जो किसी अन्याय का प्रतीकार कर सकता है, ऐसा व्यक्ति यदि क्षमावान हो, तब तो यह गुण है। पर यदि कोई कायर क्षमावान बने, तो यह गुण नहीं कहलाएगा। क्षमा तभी आध्यात्मिक जीवन का गुण बनती है, जब किसी के प्रति अन्याय होता है और वह व्यक्ति उस अन्याय का बदला लेने में समर्थ भी होता है और तब भी वह उस अन्याय करनेवाले को क्षमा कर देता है। कहा जाता है, अपराध के ऊपर क्रोध करना चाहिए, अपराधी के ऊपर नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि अपराधी तो क्षमा का पात्र होता है, किन्तु जो अपराध है, दुर्गुण है, वह कभी-भी क्षम्य नहीं है। अर्थात् अपराधी के साथ ठीक-ठीक व्यवहार होता रहे, तो उसके सुधरने की सम्भावना रहती है।

एक बार ईसा ने रास्ते में लोगों को एक स्त्री को घेरकर बुरा-भला कहते सुना। पूछने पर वे सब बोले कि वह स्त्री पतिता है और वे सब पत्थर मारकर उसके प्राण लेना चाहते हैं। ईसा ने जैसे ही उनसे कहा कि जिसका कभी कोई पतन नहीं हुआ हो, वही उसे पत्थर मार सकता है। तब एक-एक करके सब वहाँ से मुँह नीचा किए चले गए। वह स्त्री तत्पश्चात् ईसा की शरण में जाकर परम साध्वी महिला बन गई।

इस उपाख्यान का मर्म यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में किसी-न-किसी रूप में, कोई-न-कोई अपराध या दोष घटित हुआ रहता है। जो साधक या भक्त है, वह किसी को भी अपराधी घोषित करने का अधिकारी मानेगा, जबकि उससे अपने जीवन में कभी कोई अपराध न हुआ हो। भक्त का पथ ऐसा है कि उसके जीवन में धर्म का अनुशासन रहता है, संयम रहता है। उसके जीवन में क्षमा स्वत: आती है। क्षमा जैसे सद्गुण जिसके जीवन में अवतरित हो जाते हैं, उसे फिर संयम रखने का प्रयास नहीं करना पड़ता – संयम स्वयं ही उपस्थित होकर उसके सद्गुणों के पीछे-पीछे चलने लगता है। मन में क्रोध का आधिक्य होने पर मनुष्य चाण्डाल बन जाता है, तो क्यों हम क्रोध को प्रश्रय देकर अपने मन को दूषित करें? क्षमा करते चलना ही उचित है। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (६४)

स्वामी सत्प्रकाशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी सत्प्रकाशानन्द **(१८८८-१९७९)** रामकृष्ण संघ में एक प्रसिद्ध विद्वान संन्यासी थे। १८८८ ई. में ढाका में उनका जन्म हुआ था। १९०१ ई. में स्वामीजी के ढाका जाने पर उन्होंने तीन बार स्वामीजी का दर्शन किया था। उस समय उनकी उम्र १२ वर्ष की थी। परवर्तीकाल में उनके मुँह से स्वामीजी की स्मृतियाँ सुनी थीं तथा उनके स्वर में रिकार्ड करके Vivekananda as We Saw Him DVD में उसका उपयोग किया हूँ। वे कहते थे, स्वामीजी की वह सम्मोहक आँखें कभी भूलने का नहीं है। स्वामीजी के दर्शन ने ही उनको रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया।

स्वामी सत्प्रकाशानन्द

मैंने १९७२ ई. में सेन्ट लूईस में सत्प्रकाशानन्दजी का प्रथम दर्शन किया था। मैं उस समय हॉलीवूड आश्रम में था। ग्रीष्म की छुट्टी में मैं सेन्ट लूईस, शिकागो, बोस्टन और थाउजेन्ड आइलैण्ड पार्क गया था। महाराज के पास तीन-चार दिन थे। उन्होंने एक दिन मुझे व्याख्यान देने के लिए कहा। तथा उनके संन्यास-मन्त्र के जीर्ण कॉपी से नवीन कॉपी में अनुलेखन करने के लिए कहा। उन्होंने ठाकुर के नौ संन्यासी शिष्यों का दर्शन किया था – विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, शिवानन्द, प्रेमानन्द, अद्‌भुतानन्द, अखण्डानन्द, अभेदानन्द, विज्ञानानन्द और सुबोधानन्द। सत्प्रकाशानन्दजी ने अपनी स्मृतिकथा Sri Ramakrishna's Life and Message in the Present Age पुस्तक के परिशिष्ट में लिखा है।

उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द को १९०८ ई. सरस्वती पूजा के दिन बेलूड़ में प्रथम दर्शन किया था। उन्होंने मुझसे उस दिन क्या तारीख थी, जानना चाहा। मैंने कहा, महाराज मैं उस दिन कौन-सी तारीख थी, जानने का प्रयास करूँगा। तत्पश्चात् मैंने कोलकाता अद्वैत आश्रम के लाईब्रेरीयन को गुप्त प्रेस पंजिका कार्यालय में जाकर उक्त तारीख पता लगाने के लिए कहा। उन्होंने वहाँ पर आठ आना देकर उस वर्ष के पंजिका से तारीख (६ फरवरी, बृहस्पतिवार) की जानकारी प्राप्त करके मुझे बताया था। हॉलीवुड से मेरे द्वारा उस तारीख को बताने से महाराज बहुत आनन्दित हुये थे। क्योंकि उन दिनों वे उनलोगों की स्मृतिकथा लिख रहे थे। स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा पुस्तक में सत्प्रकाशानन्दजी की स्मृति मैंने अंग्रेजी से बंगला में अनुवाद किया था।

राजा महाराज के ढाका गमन की एक घटना उन्होंने १७.०३.१९६० ई. को पवित्रानन्दजी को लिखा था : ''महाराज जब (१९१६) दल-बल के साथ ढाका गये थे, तब काशिमपुर के जमींदार के घर में उनके रहने की व्यवस्था हुई थी। पूजनीय बाबूराम महाराज और महाराज एक ही शयन-घर का उपयोग करते थे। एक दिन सन्ध्या समय के कुछ बाद एक प्रवीण पदस्थ व्यक्ति महाराज के निकट आये। महाराज उस समय शयन-घर में ही थे। मैं भी उस समय वहीं पर था और कौन-कौन था, स्मरण नहीं है। बातों-बातों में उन सज्जन ने कहा, ''हमलोग संसारी लोग बहुत प्रकार से संसार में आबद्ध हैं। कितने प्रकार के बाधा-विघ्न हैं, उसका पता नहीं। हमारे लिए ईश्वर की ओर अग्रसर होना किस प्रकार सम्भव है?'' तब महाराज ने दृढ़स्वर से कहा, **''देखिए, उनको पुकारने से, उनकी कृपा से पर्वत के समान विघ्न राख के जैसा हो जाता है।''** 'पर्वत के समान विघ्न राख के जैसा' इस बात को महाराज ने बहुत दृढ़ता से कहा।

सत्प्रकाशानन्द अपने माँ-पिताजी की एकमात्र सन्तान थे। पिताजी कम उम्र में ही मर गये थे। वे वृद्ध माँ की सेवा करते थे। वे छात्रावस्था से ही मठ-मिशन से जुड़े हुए थे तथा ढाका मठ के आरम्भ से ही उसके कर्मी थे। वे विभिन्न

समय हमारे समक्ष पुराने दिनों की स्मृति बहुत उत्साह के साथ कहते थे : १९०८ ई. में जनवरी महीने के अन्तिम समय में मैं अपने एक आत्मीय के साथ ढाका से कोलकाता गया। उन दिनों मैं ढाका के एक विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के इण्टरमिडिएट का छात्र था। तीर्थयात्रा के उपलक्ष्य में दस दिनों का एक कन्सेशन टिकट मिला था। जितना याद आ रहा है, सोमवार, ३ फरवरी को सूर्यग्रहण हुआ तथा उस दिन सभी पुण्यार्थियों ने गंगास्नान किया था। मैंने भी स्नान किया था।

बचपन से ही रामकृष्ण मिशन के साथ घनिष्ठ सम्पर्क होने से कोलकाता के सन्निकट श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क के व्यक्ति और स्थान मुझे मालूम थे। मेरा महासौभाग्य था कि १९०१ ई. के मार्च महीन में मैंने स्वामी विवेकानन्द का तीन बार दर्शन किया। १९०५ ई. के शरत् काल से मैं ढाका रामकृष्ण एसोसियशन में कार्य करता था। शनिवार हमारे साप्ताहिक अधिवेशन में हमलोग श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ करते थे। तदनन्तर भक्तिपरक भजन होते थे।

कोलकाता पहुँच कर स्वभावत: ही वचनामृतकार 'श्रीम' का दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई। जहाँ पर मैं था, वहाँ से उनका निवास स्थान बहुत दूर नहीं था। बहुत सम्भव है कि शनिवार, १ फरवरी सन्ध्या समय मैं उनके पैतृक-स्थान गुरुप्रसाद चौधरी लेन में गया। घर में घुसकर, 'श्रीम' के विषय में पूछने पर मुझे तिन तला दिखाया गया।

उस घर के तीसरे तल पर पहुँच कर देखा, मास्टर महाशय अनेक भक्तों के साथ बरामदे में बैठे हुए थे तथा उनके निकट ही मन्दिर था। अप्रत्याशित भाव से मैंने अपने एक घनिष्ठ मित्र सागर बाबू को पाठ करते हुए देखा। मैंने देखा कि मास्टर महाशय गम्भीर भाव से पाठ सुन रहे थे। मैं विस्मित होकर सोचने लगा कि जिन्होंने वचनामृत लिखा है, वे एक छात्र के जैसा पाठ सुन रहे हैं।

मैं वहाँ पर सागर बाबू को देखकर बहुत आनन्दित हुआ; वे ढाका से कोलकाता डॉक्टरी पढ़ने के लिए आये थे। वचनामृत पढ़ने के बाद संक्षिप्त चर्चा हुई और सागर बाबू को छोड़कर और सभी लोग चले गये। सागर बाबू ने मास्टर महाशय के साथ मेरा परिचय करा दिया और कहा कि मैं ढाका रामकृष्ण सोसायटी के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हूँ।

सागर बाबू भी चले गये। तब मास्टर महाशय ने मेरे साथ बातें की तथा ढाका रामकृष्ण एसोसिएसन के विषय में पूछा। उन्होंने ठाकुर मन्दिर में जाकर एक ग्लास तथा एक प्लेट में प्रसादी जल और प्रसादी मिठाई लाकर मुझे खाने के लिए दिया। उनके निर्देशानुसार मैं वह सब लेकर बाहर छत पर खाकर मास्टर महाशय के पास गया। उन्होंने मुझसे पूछा, ''ग्लास और प्लेट कहाँ रखे हो?'' मैंने कहा, छत पर रखा हूँ। उन्होंने कहा, ''नहीं, नहीं, यह अच्छा नहीं। तुम वह सब धोकर रखो।'' मैं वह सब नीचे ले जाकर कल-घर में धोकर ले आया। मास्टर महाशय ने कहा कि उन सबको पोंछ कर यथास्थान रख दो। उस समय उन्होंने और कहा था कि ठाकुर बहुत व्यवस्थित थे और सफाई-स्वच्छता पसन्द करते थे। वे सामान ऐसे रखते थे कि कोई रात्रि में भी खोज सकता था।

मास्टर महाशय ने फिर मेरे बारे में तथा ढाका आश्रम के बारे में भी पूछा। मैंने कहा, ''ढाका शहर के आस-पास हमलोग एक आश्रम बनाने का प्रयास कर रहे है। हमारे मित्र सागर बाबू, जिनका एक धनी परिवार में विवाह हुआ है, उन्होंने आश्रम के लिए कुछ एकड़ जमीन दिया है। हमलोगों ने एक कुटिया तैयार करके वहाँ पर एक आश्रम आरम्भ किया है तथा हमारा एक युवक सहयोगी वहाँ पर निवास कर रहा है। वह साधु होना चाहता है।''

मैंने मास्टर महाशय को और कहा, ''ठाकुर के सर्वधर्मसमन्वय के आदर्श पर हमलोग वहाँ पर विभिन्न धर्मों की मन्दिर की स्थापना करेंगे।'' मैंने बहुत उत्साह के साथ कहा, ''वहाँ पर हिन्दू मन्दिर, मुस्लिम मस्जिद, क्रिश्चिन चर्च और बौद्ध मन्दिर रहेगा तथा भविष्य में अन्यान्य धर्मों का मन्दिर बनेगा। प्रत्येक मन्दिर के सामने योग्य प्रतीक रहेगा। आश्रम के प्रवेशद्वार पर बड़े साईनबोर्ड में लिखा रहेगा, "The Temple of Harmony of Religions" सर्वधर्मसमन्वय का मन्दिर।'' मेरी उत्साहपूर्ण बातें मास्टर महाशय बहुत शान्त भाव से सुन रहे थे।

मैं जब चुप हो गया, तब मास्टर महाशय ने कहा, ''तुमलोग फिर साईनबोर्ड और विज्ञापन चाहते हो। स्वयं का विज्ञापन, यह ठाकुर का भाव नहीं था। ठाकुर के मत से जनकल्याण कर्म करने के पहले (अँगुली से स्वयं का हृदय स्पर्श करके) इस हृदय में कुछ संचय करना उचित है। पहले तुमलोग ईश्वर के प्रति भक्तिलाभ करो। बाद में तुमलोग कुछ भी नहीं कर पाओगे। तुमलोग केवल अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हो। ठाकुर बार-बार कहते थे कि ईश्वर हेतु प्रार्थना करना होगा, निर्जन में-गुप्तभाव से।'' **(क्रमशः)**

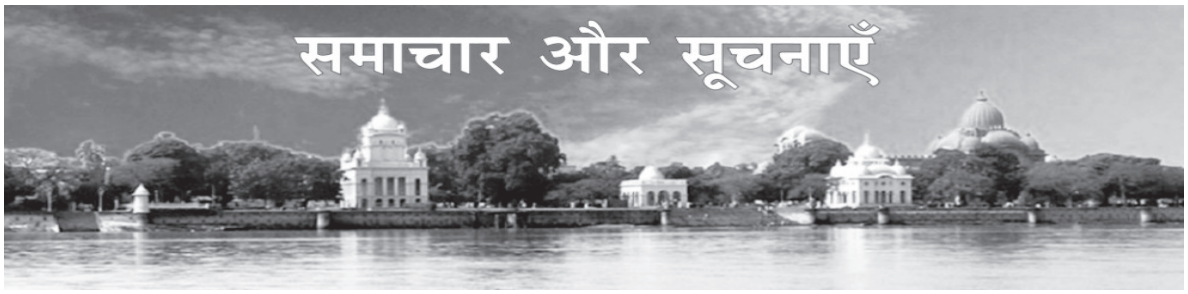

रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द सोसायटी, जमशेदपुर में शताब्दी समारोह का आयोजन हुआ

२३ फरवरी, २०२४ से २५ फरवरी, २०२४ तक रामकृष्ण मिशन, विवेकान्द सोसायटी, जमशेदपुर में त्रिदिवसीय शताब्दी समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें रामकृष्ण मिशन के देश-विदेश के विभिन्न केन्द्रों से २५६ साधुओं और लगभग ५०० भक्तों ने भाग लिया। कार्यक्रम २३ फरवरी को प्रात: ८:३० बजे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज के दीप-प्रज्ज्वलन, संन्यासियों के द्वारा वेदपाठ और स्वामी एकव्रतानन्द जी महाराज के भजन की 'मधुर गीति लहरी' से हुआ। तत्पश्चात् आश्रम के सचिव पूजनीय स्वामी अमृतरूपानन्द जी महाराज ने समागत सभी संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और भक्तों का हार्दिक स्वागत किया। तदनन्तर रामकृष्ण मठ एवं मिशन के परम अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज और उपाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज के संदेशों का वाचन हुआ। सभा को स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी निखिलेश्वरानन्द, स्वामी शान्तात्मानन्द, ओंकारनाथ महान्ती बाबू ने सम्बोधित किया।

द्वितीय सत्र २.३० बजे से हुआ, जिसमें स्वामी तत्त्वविदानन्द, सह-महासचिव, बेलूड़ मठ, स्वामी शान्तात्मानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन, गुरुग्राम, स्वामी मुक्तिदानन्द, न्यासी, रामकृष्ण मठ और सचिव, श्रीरामकृष्ण आश्रम, मैसूर और 'उद्बोधन' पत्रिका के सम्पादक, स्वामी कृष्णानाथानन्द ने सभा को सम्बोधित किया। इसी सत्र में 'स्वामी आदिनाथानन्द स्मृति-कथा' नामक पुस्तक का विमोचन महासचिव महाराज ने किया।

२४ फरवरी को स्वामी अद्भुतानन्द महाराज की जयन्ती थी। प्रात: ६.३० बजे प्रभात फेरी निकाली गयी, जिसमें १६ विद्यालयों के २५०० बच्चे, २०० शिक्षकों और लगभग १५० साधुओं ने भाग लिया। प्रात: प्रभात फेरी में सभी भक्तों ने ५ कि.मी. की शोभायात्रा निकाली। ठाकुर की विशेष पूजा हुई। प्रथम सत्र प्रात: ९ बजे प्रारम्भ हुआ। प्रथम सत्र के वक्ता थे – स्वामी ज्ञानलोकानन्द, न्यासी, रामकृष्ण मठ-मिशन और सचिव, विवेकानन्द जन्मभूमि स्थान, स्वामी अव्ययात्मानन्द, सचिव, रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, जिन्होंने स्वामी अद्भुतानन्द जी के जीवन पर सरस प्रकाश डाला। अन्य वक्ता थे, स्वामी शिवप्रदानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन, पुरुलिया, स्वामी निर्विकारानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन, इन्दौर और स्वामी आत्मप्रभानन्द। आज के दिन ही साधु भण्डारा हुआ।

द्वितीय सत्र ३ बजे से ७ बजे तक चला। इसमें 'श्रीरामकृष्ण द्वारा समर्थित नारदीय भक्ति' पर न्यासी स्वामी तत्त्वविदानन्द जी और विवेक ज्योति के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिये। स्वामी शान्तात्मानन्द, स्वामी निखिलेश्वरानन्द और महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी ने 'सर्वधर्म समन्वयावतार श्रीरामकृष्ण' पर व्याख्यान दिया। संध्या ७ बजे सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ, जिसमें श्री आर्य बणिक, नवागत भट्टाचार्य, परमशिवम घोष, स्वामी कृपाकरानन्द, पं. पूर्बायन चटर्जी और अर्चिक बनर्जी ने संगीत-गायन-वादन किया।

२५ फरवरी को ११ बजे, प्रथम सत्र में स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, स्वामी शुद्धिदानन्द, स्वामी अच्युतेशानन्द , डॉ. सोमनाथ भट्टाचार्य और स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित किया।

द्वितीय सत्र में स्वामी मुक्तिदानन्द, श्री अरिजित सरकार, स्वामी सर्वलोकानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी महाप्रज्ञानन्द और स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया। अन्त में आश्रम के सचिव स्वामी अमृतरूपानन्द ने सभी अतिथियों, कलाकारों, स्वयंसेवकों आदि को धन्यवाद दिया। संध्या में पं. समर साहा, सुप्रभात भट्टाचार्य, नवागत भट्टाचार्य, अरिक्षित बनर्जी, समरप्रिय गोस्वामी, परमशिवम घोष, अमीय रंजन बन्द्योपाध्याय, गोविन्द चक्रवर्ती और शुभकान्ति चटर्जी ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।